महेश्वर महापात्र विरचिता

अभिनय चन्द्रिका

संपादन-प्रस्तुतिः

शिवशङ्कर त्रिपाठी

महेश्वरमहापात्र विरचिता

अभिनयचन्द्रिका

संपादन-प्रस्तुतिः
शिवशङ्कर त्रिपाठी

भारतीय मनीषा-सूत्रम्
दारागंज, इलाहाबाद-२११००६

ISBN : ९७८-८१-९०८८९०-६-३

संस्करणम् : प्रथम संस्करणम् संवत् २०७३ विक्रम

प्रकाशनम् : भारतीय मनीषा-सूत्रम्
दारागंज, इलाहाबाद- २११००६

मूल्यम् : ₹ ८७५ /- (आठ सौ पचहत्तर रुपये)

कापीराइट : शिवशङ्कर त्रिपाठी

मुद्रणम् : एकेडमी प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद- २११००६
मो० : ९४१५२१४७८८

MAHESHWAR MAHA PRTRA VIRACHITĀ

ABHINAYA CHANDRIKĀ

SAMPADAN PRASTUTIH

Shiv Shanker Tripathi

BHĀRATĪYA MANĪṢĀ SŪTRAṂ
DĀRĀGANJ ALLĀHĀBĀD. 211006

ISBN	:	978-81-908890-6-3
EDITION FIRST	:	SAMVAT 2073 VIKRAM
PUBLISHER	:	BHĀRATĪYA MANĪṢĀ SŪTRAṂ Daraganj , Allababad- 211006
Price	:	₹ 875 (Eight Hundrad Seventy five only)
©	:	SHIV SHANKER TRIPATHI
PRINTER	:	ACADEMY PRESS Daraganj, Allahabad - 6 M :. 9415214788

आभार

हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद के पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पूर्व साहित्य विभाग प्रमुख
साहित्य, इतिहास, संस्कृति के मर्मज्ञ
श्री हरिमोहन मालवीय जी ने पुस्तक की प्रति उपलब्ध
करा कर प्रकाशित करने का अवसर प्रदान किया।

- सम्पादक

उपक्रमः

महेश्वरमहापात्र विरचिता

अभिनय चन्द्रिका

●

संपादन-प्रस्तुतिः

शिवशङ्कर त्रिपाठी

अभिनय : एक अवलोकन

अभिनय का सामान्य अर्थ किसी दशा का अनुकरण करना है, परन्तु नाट्यशास्त्र एवं नृत्यशास्त्र में यह विशद-अर्थी तथा स्वरूप-व्यापी है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में जो व्याख्या की है तदनुसार, सहज शब्दों में-हम आगे की ओर ले (अभिमुख) जाने वाला तत्व, सभी को अभिमुखी होने में नेतृत्व करने वाला, एक ऐसी शक्ति जो हाव-भाव, मुद्रा, चेष्टा, वाणी एवं विचारादि को नेतृत्व, जीवन्तता प्रदान करती है, कह सकते हैं। आचार्य भट्टतोत का कथन-'अभि शब्देन अभिमुख्यं, न शब्देन निषेधः, य शब्देन यदर्थेलक्ष्यते, तेन स्व पार्श्वोन्मुखदेशागमनेन अभिमुख्यं, अभिमुखत्वम! 'भी समभावी संकेत देता है। अस्तु। यह तो निर्विवादहै-अंग्रेजी शब्द 'एक्टिंग' अभिनय का अर्थ बोधी कथमपि नही हो सकता। हिन्दी साहित्य-कोश में 'अभिनय' विषयक टिप्पणी इस प्रकार है-

अभिनय- 'अभिनयति हृद्गत भावान् प्रकाशयति। मनके क्रोधादि भावको प्रकट करने वाली आंगिक चेष्टाओं द्वारा किसी विषय अथवा व्यक्तिका प्रकृतअनुकरण करके प्रदर्शित करने को अभिनय कहते है। किन्तु अभिनय में बाह्य कार्य प्रदशित करना उतना अभिप्रेत नही होता, प्रत्युत प्रकृत मनका भाव व्यक्त करना ही इसका प्रधान उद्देश्य होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार अभिनय चार प्रकार से सम्पन्न किया जाता है-

१-आंगिक, २-वाचिक, ३-आहार्य और ४- सात्त्विक। नेत्र और मुखके हाव-भाव तथा हस्तपादादि अंगोंके संचालन द्वारा किसी प्रकृत विषय के अनुकरण करने को आंगिक कहते हैं। बीभत्स, करुण, रौद्र, प्रभृत रसयुक्त वाक्य द्वारा मानसिक भावोंके अनुकरण को वाचिक कहते हैं। वस्त्राभरणको आहार्य कहते है, जैसे, लव-कुश के अभिनयके लिए अभिनेताओं की अवस्था बारह वर्ष के लगभग तथा वेश-भूषा ऋषि-बालकों की-सी होनी चाहिए। अतः इन बातों को ध्यान में रखकर लव-कुश की प्रकृत मूर्ति के अनुकरणको आहार्य कहेंगे। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, आदिको सात्त्विक भाव कहते हैं। ये भाव मुख, हस्त, पाद, आदिकी विशेष भंगी एवं रोमांच और अश्रुपात से अभिनीत होते हैं। नाट्यशास्त्र ने उत्कृष्ट अभिनय के अनेक आवश्यक गुण माने हैं; जैसे, अनुकरण-कुशलता, दृष्टि-सौष्ठव, श्रुति-माधुर्य एवं परिहास, इत्यादि। भारत में अभिनय का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। संस्कृत भाषा में भास ने सर्व प्रथम नाटक लिखा था। इस पुस्तक का काल-निर्णय करने से मालूम होता है कि सवा दो हजार वर्ष पहले इस देश में अभिनय प्रारम्भ

हुआ होगा। नाट्यकला के उद्भव के सिलसिले में प्रायः यूनानी नाटकों का नाम सबसे प्रथम लिया जाता है। किन्तु अनुकरण, नकल तथा आधुनिक काल में जिसे अभिनय कहते हैं, इन सबके मूल कारण हमें मनुष्य की आदिम जातियों का अध्ययन करने से प्राप्त होंगे। अनुकरण करने की वृत्ति ही संसार भर के बालकों में सबसे अधिक पायी जाती है। यह प्रवृत्ति पशुओं में भी पायी जाती है। हैवमियर अपनी 'दि ड्रामा आफ सैवेज पीपुल्स' में कहता है कि असंख्य जातियों की इस अनुकरण वृत्ति के पीछे दो प्रयोजन होते हैं- एक तो इससे वास्तविक अनुभूति के समान ही आनन्द प्राप्त होता है; दूसरे, मनुष्य को दूसरों के सम्मुख अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने का अवसर मिलता है। अर्थात्, यह भी अपने-आप में एक प्रकार की भाषा है। इस दूसरे उद्देश्य से हाव-भाव एंव मद्राओं का विकास हुआ। हमारी संस्कृति के समान ही नाट्यप्रवृत्ति का उद्भव भी प्राचीनतम है तथा इसका पूर्ण विकास भी सबसे बाद में हुआ है। अधुनिक उन्नत नाटकों एवं प्राचीन अविकसित नाटकों की यदि तुलना की जाय तो आधारभूत-

सिध्दान्त हमें दोनों में वही मिलेंगे। रुचि-परिष्कार एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ हमारी अभिनय कला का विकास हुआ है। मिस्र, यूनान, जापान तथा इटली में अभिनयकला के क्रमिक विकास के हमें विवरण मिलते हैं। इटली ने इस दिशा में विशेष उन्नति की। इंग्लैण्ड में शेक्सपियर ने अभिनय-कला पर बहुत जोर दिया। उसने अपने नाटको में चरित्रचित्रण में विशेष कुशलता प्रदर्शित की और मानव-समाज के प्रत्येक प्रकार (टाइप) का उसने अपने दुःखान्त एवं सुखान्त नाटकों में चित्रण किया है। 'हैमलेट' द्वारा उसके अभिनेताओंको दिये जाने वाली भाषा मे शेक्सपियर ने अभिनयकला के महत्व के विषयमें अपने निजी विचार विस्तार से प्रकट किये है और उत्कृष्ट अभिनय कला के तत्त्वों एवं महत्त्वपूर्ण अंगों की विशद् व्याख्या की है।

१८वीं शताब्दी में अभिनय कला को लेकर विभिन्न सिध्दान्त एवं सुनिश्चित भेद प्रकट होने लगे। फ्रांसीसी विश्वकोशकार डेनिस डाइडरोंटने फ्रांसीसी परम्परागत शास्त्रीय नाटकों से ऊबकर उसके विरोध में नाटक में वास्तविक जीवन के चित्रणका सिध्दान्त स्थापित किया। बीसवी शताब्दी में अभिनय कला के कई सिध्दान्त प्रतिपादित किये गये अभिनय की विभिन्न पाठशालाओं एवं परिषदों में (उदाहरणतः इंग्लैण्ड में बर्किंघम का 'रिपेर्टरी थिएटर' तथा लिवरपूल स्थित ऐवे 'रिपेर्टरी थिएटर', आयरलैण्ड में डबलिन स्थित ऐवे थिएटर इत्यादि)। १९१० में मास्को आर्ट थिएटर के विख्यात निर्माता एवं निर्देशक स्टैनिसलावस्कीने अभिनय में स्वाभाविकतावादका सिद्धान्त स्थापित किया। उसने अपने अभिनेताओं को यह आदेश दिया कि वे जिन पात्रों को चित्रित करने जा रहे हों उनके वार्तालापों एवं कार्यों का मनन करके उन्हें आत्मसात् कर लें और इस प्रकार उन पात्रों को सजीव कर दें। वे यह न समझें कि वे नाटक में अभिनय कर रहे हैं, वरन् उन्हें यह समझना चाहिए कि वे वास्तविक जीवन में कार्य कर रहे हैं। यह मनोवैज्ञानिक स्वाभाविकतावाद अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और अभिनय में अस्वाभाविकता को अवांछनीय समझा जाने लगा। लगभग इसी समय स्टैनिसलावस्की के अभिनय सिध्दान्तके विरोध में एक दूसरा सिध्दान्त चला जिसे

प्रतीकवादियों, अभिव्यंजकवादियों, इत्यादि ने चलाया। इस सिध्दान्त के अनुसार नाटक में अस्वाभाविकता एवं अलौकिकता का समर्थन तथा स्वाभाविकता का विरोध किया गया। यही कारण है कि आधुनिक नाटकों में एक ओर जहाँ यथार्थवाद तथा अतियथार्थवाद की झलक देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर काल्पनिकता तथा अति–भावात्मकता से पूर्ण भावनाट्योंका प्राचुर्य मिलता है।

अभिनय के चार भेद– आंगिक, वाचिक, आहार्य, और सात्विक। प्रथम आंगिक अभिनय में हाथ, वक्ष, शिर, पार्श्व, कटि और पद–क्रिया का प्राधान्य। शास्त्रनुसार हस्त मुद्राएं– असंयुतहस्त, संयुत हस्त तथा नृत्त हस्त तीनों की क्रमशः चौबीस, तेरह एवं सत्ताईस मुद्राएं परिभाषित की गयी हैं। स्थान, समय, अवसर, व्यक्ति और वस्तु आदि–संगमित हस्त मुद्राओं की संज्ञा बहुशः सम्भावित। आचार्यों ने अभिनयान्तर्गत हस्त मुद्रा–विनियोंगार्थ कतिपय निर्देश निश्चित किये है। हस्तादिउपांगों से पोषित एवं रस–भावादि का प्रकटन हो। उत्तम अभिनयों में हाथ भाल पर मध्य में यथासम्भव हृदय पर अवस्थित हों। हाथों की निकटवर्ती अवस्थिति महापुरुषाभिनय, मध्य–अवस्थिति मध्य महापुरुषाभिनय की परिचायिका। अल्पसावित्क (अधम जनों) जनों के अभिनय में हस्त प्रचार के विविध रूप प्रयुक्त। आन्तरिक भावों का प्रकटन करने वाला हस्त अभीष्ट–उचित। मूर्च्छनादि भावाभिव्यंजना के लिए प्रायः कर्कट आदि हस्त संगत। कतिपय आचार्यों के मतानुसार–मूर्च्छित, तन्द्रित, निद्रित, भयग्रस्त, व्याकुल, ग्लानियुक्त, वार्धक्यग्रस्त, सुप्त, ज्वराक्रान्त, शोकान्वित, रूग्ण, मत्त, मदोन्मत्त पागल निष्चेष्ट एवं तपस्वी आदि के भावाभिव्यंजनार्थ हस्ताभिनय अकरणीय, उनका प्रदर्शन सात्विक भावों के माध्यम से करणीय ही संगत है। हस्ताभिनय द्वारा संदर्शन असम्मव–

मूर्च्छिते, तन्द्रिते,भीते व्याकुले च जुगुप्सिते।
ग्लाने, जरार्दिते, सुप्ते, ज्वरिते शोक पीडिते।।
शीतात, व्याधिते मत्ते, विषण्णोन्मत्तयोरपि।
न कराभिनयः कार्य : ....

– नृत्याध्यायेः हस्त प्रकरणे/३२४.३२

हस्तमुद्राएं:

ज्ञान, अभिलाषा, चिन्तन, सन्तुष्टि, हार्दिकभाव, अनुराग प्रतिज्ञा, स्वभाव, पाण्डित्य, परार्थ, सामर्थ्य अथवा समर्थन, विश्वास, आदर, सान्त्वना, गुण आदि भावों की अभिव्यक्ति–हेतु हृदयस्थ अधोमुख हस्तमुद्रा संगत, रक्त, पीत वर्ण के भाव संदर्शनार्थ मण्डलाकार हस्तमुद्रा, श्वेत वर्ण के लिए उत्तानहस्त, नील वर्ण–हेतु परिमर्दितहस्त का प्रयोग समीचीन। अविनय, मालिन्य, उदासीनता, विस्मय, निर्गुण आदि भावों को अभिव्यंजित करने के लिए परिवृत्त चतुरहस्त का प्रयोग। निन्दा–भाव प्रदर्शन में हथेली उलटी या घुमावपूर्णा होनी चाहिए, समान–अवस्था–संदशनार्थ हथेली ऊपर की ओर, यदि दोष–भाव अभिव्यक्त करना है तो उत्तान हथेली हृदयोपरि अवथित होनी उचित है।

सुरते स्वस्तिकाकारौ चातुर्यवचनेषुच।
संयुतौ तौ विधातव्यावहार्यां मुखदेशगौ।।

स्वस्तिकौ तौ प्रयोगतव्यौ स्वागताभिनयेऽपिच।
निपुणे श्लिष्टविश्लिष्टौ नेत्रे तद्देश विच्युतौ।।
स्वस्तिकी भूयतोस्तोऽथ चाक्षुषौ विस्तृताविमौ।
स्वस्तिकावथ कर्तव्यौ प्रज्ञैस्तद्वेष्टिताविमौ।।

हस्तप्रकरणे / १७ -१९

रतिक्रीड़ा, चातुर्यपूर्णा तथ्यों की अभिव्यंजना में स्वस्तिक हाथों का प्रयोग। पूजन-आराधन-भाव व्यक्त करने की स्थिति में दोनों स्वस्तिक हस्त मुख के समक्ष अवस्थित, स्वागताभिनय में भी स्वस्तिक हस्त मुद्रा में पुण्यभाव प्रदर्शनार्थ संयुक्त स्वस्तिक हस्त अथवा पृथकतः भी प्रयोज्य। नेत्र के भाव प्रदशर्न में स्वस्तिक हस्त को नेत्र से गिरा कर रखे। अथवा स्वस्तिक हस्त प्रसारित करना चाहिए।

हंसास्य हस्त

दक्षिण, गार्हस्पत्य, आहवनीय, अग्नित्रय के विन्यास रूप तर्जनी, अंगुष्ठ तथा मध्यमा अंगुलियों के अग्रभाग संश्लिष्ट (सटे) हों, शेष दोनों अनामिका तथा कनिष्ठिका पृथक्-पृथक् ऊपर की ओर उठी हों, उसे हंसास्य हस्तमुद्रा कहते हैं।

हलकी, शिथिल, स्वल्प वस्तु के भाव प्रदर्शनार्थ हंसास्य हस्त मुद्रा प्रयोज्य।

दरिद्र तथा मूर्ख जन के भाव-प्रदर्शनार्थ, युद्ध अथवा शरीरघर्षण और निषेध भाव-व्यंजनार्थ हंसास्य हस्त मुद्रा का प्रयोग। हृदयस्थ-भाव-व्यंजनार्थ, हंसास्य मुद्रा को ऊर्ध्व मुख, प्राणों एवं किसी वस्तु के सेवन का आशय प्रकटनार्थ अधोमुख स्थातव्य। रतिक्रीडा-काल के श्वास-प्रश्वास एवं काम-भाव-अभिव्यंजनार्थ हंसास्य हस्त हृदयोपरिस्थातव्य। परिहास तथा रतिक्रीडा-प्रदर्शन-काल में हंसास्य को ऊर्ध्व मुखी स्थिति में स्तनोपरि एवं अर्पण भाव की अभिव्यक्ति-हेतु हंसास्य अधोमुखी होना चाहिए। लेप अथवा अंगराग-भावाभिव्यंजना के लिए, हंसास्य की कम्पित अंगुली तथा कलिका-विकचन-भाव-व्यंजनार्थ उंगलियां ऊर्ध्वावस्था में संड़सी की भाति प्रयोज्य। पुष्प-विकास-भाव-प्रदर्शनार्थ, हंसास्य हस्त मुद्रा को मण्डलाकार स्थिति में कम्पित, अधोमुख स्थातव्य एवं उदय-भाव प्रदर्शनार्थ, उसे खोलकर, ऊर्ध्व मुखरख दो-तीन बार कम्पित कर देना चाहिए।

भ्रमरहस्त

मध्यमा तथा अंगुष्ठ परस्पर मिले, तर्जनी संड़सी की भांति, अंगुष्ठ के मूल को स्पर्श करती हुई मुडी, नत हो, अनामिका और कनिष्ठा फैली हों, ऐसी हस्त मुद्रा, भ्रमरहस्त कही जाती है।

विश्वास, बालकों-संग वार्तालाप, डाट-फटकार, तालपत्र, शीत आदि की भावाभिव्यंजना में भ्रमरहस्त को सशब्द गिराकर प्रयोज्य। ताल पत्र के भाव-प्रदर्शन-हेतु चारों ओर घुमा कर प्रयुक्त करना अभीष्ट है। अक्षराभिव्यंजन तथा भ्रमराभिव्यक्ति के लिए, कम्पित कर के प्रयुक्त करे।

कांगूल हस्त

अभिनय के समय यदि अनामिका मुड़ी हो, कनिष्ठा ऊर्ध्व मुखी, शेष तर्जनी, अंगुष्ठ के अग्रभाग परस्पर मिले न हो, उसे कांगूल हस्त कहा जाता है।

कमल, अशोक, आम्रमंजरी, नवमल्लिका तथा रक्त अशोक के फूल, मंत्रणा तथा स्त्री की रोषपूर्ण वाणी की अभिव्यंजना के लिए उंगलियों को मुख के पास रखकर कांगूल हस्त रूपायित किया जाता है। विडाल आदि के पैरों, यवनों के भोजनाभिनय में कांगूल हस्त को अघोमुख करना चाहिए। तरंग, यज्ञ विम्ब, शंका, वृत्तान्त तथा शब्द के अभिनय में कांगूल हस्त को ऊर्ध्व मुखी रखना चाहिए।

वालास्त्री के अभिनय में दोनों कांगूल हस्तों को, स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित कर, पृष्ठ भाग से आते हुए प्रदर्शित करना चाहिए। लोक परम्परानुसार इस हस्त मुद्रा को कुचों के पास रखने की भी व्यवस्था-विहित है। यथोल्लिखितम् -

पृष्ठायातावुभौ कार्यौ बालायां स्वस्तिकाविमौ।
कुचदेशगतौ कार्यौ पश्चादर्थे तु लोकतः।
कर्मान्तराण्येवमस्य वुधैरुक्तानि शास्त्रतः।।

-नृत्याध्यायेः हस्त प्रकरणे।
४१-४२

ताम्रचूड हस्त

यदि अंगुष्ठ तथा मध्यमा को मोड़कर मिला दिया जाय और तर्जनी को घुमाकर झुका दिया जाय किन्तु वह हथेली को स्पर्श न करती हो। शेष दोनों उंगलियों (अनामिका तथा कनिष्ठा) को हथेली पर रख दिया जाय, उसे ताम्रचूड हस्त कहा जाता है। विश्वस्त करने विषयक कार्यो, अवसरों, समय के परिणाम जैसे काष्ठ (कला का ३०वां भाग) मुहर्त्त, जमुहाईकी कालमर्यादा और क्षण में संगीत आदि के तालमेल में, शीघ्रता में, मर्त्सना करने में, एवं बालकों को बुलाने में-सड़सी की भांति मुड़ी-मिली हुई उंगलियों के शब्द अर्थात चुटकी बजाने अथवा चुटकी काटने का प्रयोग करना चाहिए। इस ताम्रचूड हस्त को छोटिका (चुटकी काटने) नाम से भी अभिसंज्ञित किया जाता है। कतिपय विद्वानों के मत से-ऐसा मुष्ठिबन्ध जिसमें कनिष्ठा उंगली ऊपर उठी हुई हो, वह ताम्रचूड हस्त मुद्रा है। इस हस्त मुद्रा का प्रयोग सहस्त्र आदि संख्या अथवा बिन्दुओं का भाव प्रकटाने के लिए होता है।

यदि हाथ की चार उंगलियों के अग्रभाग को हथेली के मध्य भली-भांति बांध दिया जाय, अंगुष्ठ-मध्यमा को दबाकर अवस्थित रखे तो वह मुष्टि हस्त मुद्रा है। इसी क्रम में शिखर हस्त, कपित्थ हस्त, खटकामुख हस्त, सूची मुख हस्त, शंकर के अभिनय में सूची मुख हस्त को अधोमुख कर ललाट पर रखना चाहिए। इन्द्र के अभिनय में उन्नत और तिरछा प्रदर्शित करे, सूर्यादि के मण्डल प्रदर्शन में, मण्डलाकार बना तिरछा घुमाना चाहिए। खटकामुख हस्त मुद्रा की तर्जनी को ऊर्ध्व मुखी कर विस्तृत कर दिया जाय अथवा तान दिया जाय तो वह सूचीमुख हस्त मुद्रा

कही जाती है। एवमेव त्रिपताक हस्त, कर्तरी मुख हस्त, अराल हस्त-तर्जनी धनुष के समान वक्र अगुष्ठ, किचिंद मुड़ा, पूर्व-पूर्व की उंगली से उत्तर- उत्तर की उंगली भिन्न स्थिति में उन्नत और किंचित्वक्र हों अर्थ यह कि कनिष्ठा, अनामिका तथा मध्यमा क्रमशः उन्नत होती हुई क्रमशः वक्र हो तो वह अरालहस्त मुद्रा है। जल समूह के अभिनय में अरालहस्त को ललाट पर रख वहां से वृत्ताकार घुमाते हुए दूसरे के पार्श्व से अपने पार्श्व मे लाना चाहिए। विवाह के अभिनय में दोनों अरालहस्तों को स्वस्तिक मुद्रा में प्रदक्षिणा कराते हुए घुमाना चाहिए।

यदि अराल हस्त मुद्रा की तर्जनी और अनामिका दोनों उंगलियों को वक्रकर दिया जाय तो वह शुकतुण्ड हस्त कहा जाता है। यदि अराल हस्त मुद्रा की तर्जनी तथा अंगुष्ठ (दोनों) के अग्रभाग को मिला दिया जाय, तथा हथेली भीतर की ओर किंचित्नमित कर दी जाय, वह संदंश हस्त मुद्रा (सँडासी) कहा जाता है। ऊर्ध्व मुखी पांचों उंगलियों के अग्रभाग को परस्पर मिला दिया जाय तो वह मुकुल हस्त मुद्रा संज्ञित की जाती है। यदि सांगुष्ठ पाचों उंगलियां पृथक-पृथक स्थित रहती हुई मुड़कर ऊर्ध्व मुख हों तथा अग्रभाग परस्पर स्पर्श न करते हों तो वह पद्म कोश मुद्रा है। जिस हाथ की पाचों उंगलियां पार्श्वगता होकर वृत्ताकार रूप में मुडी हुई एवं हथेली की ओर प्रसरित हों, वह अलू पलूव हस्त नामित होता है। देवताओं के अभिनय में दायां अलू पलूव हस्त वामबाहु अथवा शीश पर रखना चाहिए। सुखाभिनय में उसेकर्ण-समीप रखे तथा मक्खन-भाव-प्रदर्शनार्थ नीचे लुढ़का देना चाहिए।

संयुत्त हस्त मुद्राएं

यदि दोनों पताक हस्त के तल भाग को परस्पर संयुक्त कर दिया जाय तो वह अंजलि हस्त कहा जाता है। कपोत हस्त-यदि दोनों हाथों के मूल भाग (कलाई) तथा अग्रभाग (उंगलियों के छोर परस्पर सटे एवं तलभाग(हथेली) पृथक-पृथक स्थित हो तो कपोत तथा कूर्म हस्त नामित होता है। दोनों हाथों की सभी उंगलियां परस्पर मध्य से निकल कर अथवा गुथी होकर, भीतर तथा बाहर दोनों ओर से दृष्टिगत हों तो वह कर्कट हस्त मुद्रा है। गजदन्त हस्त-दोनों सर्पशीर्ष हस्त परस्पर कोहनी तथा कन्धे के मध्य भाग को धारण करे तो वह गजदन्त हस्त मुद्रा कहा जाता है। यदि एक हाथ कपित्य तुद्रा में बनाकर उससे दूसरे मुकुल हस्त से परिवेष्टित कर अवस्थित किया जाय तो वह निषध हस्त मुद्रा है। खटका वर्धन हस्त-यदि दोनों खटका मुख हस्तों को परस्पर आमने-सामने कर दिया जाय अथवा अन्योन्याभिमुख कर दोनों स्वस्तिक हस्तों को परस्पर कलाइयों पर अवस्थित किया जाय तो उसे खटका वर्धन हस्त मुद्रा कहा जाता है। यदि दोनों सर्पशीर्ष हस्तों के वाह्य पार्श्वों को भली प्रकार संयुक्त कर दिया जाय तो उसे पुष्पपुट हस्त मुद्रा कहते हैं। दोनों अराल हस्तों को यदि स्वस्तिक हस्त मुद्रा में परिवर्तित कर, संमुखावस्था में एक-दूसरे के बाहुओं पर रख दिया जाय तो वह उत्संग हस्त मुद्रा है।

स्वस्तिक हस्त-यदि दोनों खटका मुख अथवा पताक या अराल मुख हस्तों को एक-दूसरे के पार्श्व में अवस्थित कर, उनकी कलाइयों को बाँध, उत्तान करके बायी ओर अथवा ह्रदयोपरि

रख दिया जाय तो उसें **स्वस्तिक हस्त मुद्रा** कहतें हैं। रात्रि के अभिनय में दोनो स्वस्तिक हस्तों को अधोमुख, दिवसाभिनय में प्रसारित कर अधोमुख रूप् में प्रस्तुत करना चाहिए। यदि दोनों पताक हस्त लम्बायमान तथा शिथिल हों, उंगलियां उनकी पृथक पृथक हों तो वह **दोलाहस्त** कहा जाता है।यदि दोनों शुकतुण्ड हस्त ह्रदय के सामने अधोमुखकर नीचे की ओर ले जाये जायँ तो उसे **अवहित्थ हस्त मुद्रा** कहते हैं।

मकर हस्त– यदि दोनों पताक हस्तों को ऊपर उठा कर, उनकी हथेलियों को निम्नमुखकर (एक हथेली के पृष्ठ भाग पर दूसरी को अवस्थित कर) परस्पर दोनों को संयुक्त कर दिया जाय तथा दोनों हाथों के अंगूठे ऊपर की ओर अथवा बाहर की ओर निकले हों तो वह **मकर हस्त मुद्रा** है।

राक्षस, मकर, मत्स्य, सिंह, गज, सरि–प्रवाह एवं घडियाल के अभिनय में मकर हस्त मुद्रा प्रयोज्य।

यदि दोनों मृगशीर्ष अथवा हंसपक्ष या सर्पशीर्ष हस्तों को उलटा कर के स्वस्तिकाकार बना दिया जाय तो उसे **वर्धमान हस्त मुद्रा** कहतें हैं।

नृतहस्त– की तीस मुद्राएं हैं–

यदि दोनों मांसल कुहनियां, वक्ष स्थल से अष्टांगुल दूर अवस्थित हों, दोनों खटकामुख हस्त, वक्ष के संमुख पूर्वाभिमुख रहें उसे **चतुरस्त्रहस्त मुद्रा** की संज्ञा है। प्रथमतः दोनों हाथो को उद्वेष्टित मुद्रा द्वारा चतुरस्त्र बना दिया जाय पश्चात् उन्हें हंस पक्ष मुद्रा रूप कर ह्रदय पर अवस्थित किया जाय, फिर व्यावृत्त क्रिया द्वारा, एक को ऊपर ले जाकर, उत्तानावस्था में नीचे कर दिया जाय, उस अभिनय मुद्रा को उदवृत्त कर अधोमुख वक्षोपरि रख दिया जाय, उस अभिनय मुद्रा को **उदवृत्तहस्त मुद्रा** कहा जाता है। **तलमुख हस्त**– जब दोनो हस्त उदवृत्त में स्थित होकर हंस पक्ष की मुद्रा बनातें हैं, तिरछे होकर निज पार्श्वों में आमने–सामने अवस्थित किये जाते है, तो उन्हें **तलमुख हस्त** कहा जाता हैं। मद्दल(मृदल के समान वाट्य यंत्र) की मधुर ध्वनि के अभिनय में तलमुख हस्त का विनियोग होता है। जब पताक मुद्रा में दोनो हस्त उत्तान तथा अधोमुखी हो क्रमशः दोनो स्कन्धों के बाहर की ओर निकलकर नितम्ब का स्पर्श कर ले एवं नितम्ब रेचक में हो तो वह **नितम्ब हस्त** कहा जाता है।

जब पताक अथवा त्रिपताक मुद्रा में दोनों हस्त पार्श्व देश से उठकर दोनों पार्श्वों से पृथक हो, उत्तान तथा अधोमुखावस्था में शिरपर पहुँच जायँ, पश्चात् वहां से निकल उन्हें अलग–अलग उत्तानकर, बार–बार गतिशील करके सिर के समीप अवस्थित किया जाय, उसे **केशबन्ध हस्त मुद्रा** की संज्ञा दी जाती है।

उत्तानवञ्चित हस्त – दोनों त्रिपताक हस्त जब ललाट और कपोल में से किसी एक पर ले जाकर, परस्पर आमने–सामने किंचित तिरछे होकर किंचिन्मात्र पकड़ी हुई कुहनी और कन्धे कें ऊपर रुक कर चलायमान हो जायँ तबवह **उत्तानवंचित हस्त** कहा जाता है। जब दोनो पताक अथवा त्रिपताक हस्त दोनों पार्श्वों में तिरछे प्रसरित होकर थिरकते रहें, उन्हें **लताकर हस्त** कहतें

हैं। ऊपर उठा हुआ जब एक लताकर हस्त दोनों पार्श्वों में झूले की भाँति झूलें, दूसरा हाथ खटकास्य अथवा त्रिपताक मुद्रा में कर्णोपरि स्थित रहे तो विद्वान् उसे **करिहस्त** नाम देते हैं। यहां भरत मुनि के अनुसार एक ही हस्त का प्रयोग अभीष्ट है। जब दोनों करतल, उत्तानकर प्रसरित कर दिये जायँ तो उन्हें **रेचित हस्त** कहतें हैं। हंसपक्ष हस्तों को द्रुत गति में घुमाने पर भी रेचित हस्त बन जाते हैं। अथवा दोनो हस्त मिलाकर प्रयोग करने पर वे **लक्ष्मण हस्त** कहलाते हैं। जो लक्ष्मण को तथा हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल को विदीर्ण करने में नृसिंह भगवान् के लिए अभीष्ट है। पूर्व परिभाषित रेचित हस्तों में एक वामहस्त चतुरस्र में, दूसरा दक्षिण हस्त रेचित मुद्रा में हो तो उन्हें **अर्धरेचित हस्त** कहा जाता है। जब दोनों बाहुएं ऊपर पीछे की ओर घुमाकर फैला दिये जायँ, पुनः दोनों हस्तों को पताक मुद्रा में घुमाते हुए अधोमुखी कर स्वस्तिक बना दिया जाय तो उन्हें **पल्लव हस्त** कहते हैं।

कतिपय नृत्यविद्या पारंगतों के मतानुसार- यदि पद्मकोश दोनों हस्तों को नतोन्नत कर दिया जाय, वे सामने कलाइयों पर अथवा पार्श्वद्वय पर शिथिल रहें तो वे **पल्लव हस्त** कहलातें हैं। कतिपय अन्यों के मत में पद्मकोश के स्थान पर पताक हस्तो को **पल्लव हस्त** हैं।

जब दोनों पल्लव हस्तों को शिर पर रख दिया जाय, उससे निर्मित मुद्रा **ललित हस्त** है। अन्य आचार्यों का मत है- जब दोनों चतुरस्र हस्त निश्चल होकर शिर पर अवस्थित हों, तो उन्हें **ललित हस्त** कहा जाता हैं। इनसे अतिरिक्त आचार्यों का अभिमत है- जब दोनों खटकामुख हस्तों को धीरे से ले जाकर, उनके अग्रभाग को शिर पर संलग्न कर दिया जाय तो उन्हें **ललित हस्त** कहा जाता हैं। यदि पक्षवंचितक हस्तों को उल्टा कर दिया जाय तो वे **पक्ष प्रद्योतक हस्त** हैं। कतिपय आचार्य स्वीकारते हैं- दोनों पक्षवंचितक हस्तों को उलटा कर देने पर, **पक्ष प्रद्योतक हस्त** कहा जाता है। अन्यों के मतानुसार-पक्षवंचितक उत्तान हस्तो के विपरीत, यदि उनकी उंगलियों को ऊर्ध्वमुखी कर दिया जाय, तो उन्हें **पक्षप्रदयोतक हस्त** कहतें हैं। दोनों हाथो को घुमाते हुए जब वक्षस्थल से ललाटपर पुनः पार्श्व स्थित हो जायं मण्डलाकार घूमते हुए प्रसर जायें, तो उन्हें **ऊर्ध्व मण्डलिन हस्त** कहा जाता है, अन्य आचार्य उनका ललट तक पहुँचना मात्र ही पर्याप्त कहतें हैं। नृत्याचायी के मत से लोक एवं शास्त्रानुसार उन्हें **चक्रवर्तिनिका** (चक्राकृत होने से) नाम भी दिया जाता है। जब ऊर्ध्वमण्डलिन् दोनों हस्तो को पताक मुद्रा में कर, उन्हें परस्पर सम्मुख कर पार्श्व में रख दिया जाय तो उन्हें **पार्श्वमण्डलिन् हस्त** कहा जाता है। कतिपय आचार्यों के मतानुसार- यदि वेष्टित क्रिया द्वारा दोनों बाहुओं को कुटिल गति से (आविद्धभ्रमित) घुमाया जाय तो उन्हें **पार्श्व मण्डलिन् हस्त** कहा जाता है।

उरोमण्डलिन् हस्त- एक हाथ जब उद्वेष्टित, दूसरा अपवेष्टित हो, उन्हें निज पार्श्व में वक्ष पर क्रमशः मण्डलाकार रूप में घुमाते हुए वक्ष पर रख दिया जाय तो उन्हें **उरोमण्डलिन हस्त** कहा जाता है। कुछ आचार्यों के अनुसार, दोनों हाथ वक्ष पर ही घुमाया जाय परन्तु नृत्यविज्ञों के मत से तीनो प्रकार के उरोमण्डलिन् हस्तों में पताक या हंस पक्ष हस्त उरोवर्तनिका रूप में ख्यात है।

जब एक हाथ पार्श्व में प्रसरित कर दिया जाय, दूसरे को उत्तानावस्था में वक्ष पर स्थापित किया जाय, पश्चात् अल्लपल्लव हस्त को व्यावृत्त कर वक्ष से अपने पार्श्व में लाया जाय इस प्रकार जब एक हाथ आवेष्टित क्रिया द्वारा अराल मुद्रा धारण कर वक्ष पर तथा दूसरा भी आवृत्ति द्वारा उसी स्थिति में पहुँच जाय तो उन्हें उरः **पार्श्वोर्द्धमण्डल हस्त** कहा जाता हैं। इसमें एक हाथ अल्लपल्लव मुद्रा में वक्ष पर, दूसरा अराल रूप में पार्श्व में अवस्थित रहता है।

नलिनी पद्म कोश हस्त

दोनों पद्मकोश हस्त जब व्यावृत्ति क्रिया द्वारा स्वस्तिक मुद्रा में परस्पर पृथक् होकर विमुख स्थिति में रहें तो उन्हें **नलिनी पद्मकोश हस्त** नाम दिया जाता हैं। अन्य आचार्यो का मत– जब दोनों पद्म कोश हस्त पृथक्–पृथक् परस्पर आमने सामने रहें, मणिबन्ध से युक्त व्यावृत्त तथा परवृत्त हों तब उन्हें नलिनी पद्म कोश कहा जाता है। अन्यों के मत में–जब दोनों पद्म कोश हस्त, व्यावृत्त और परिवृत्त क्रिया द्वारा घुटनों के समीप पहुँच जायें तो उन्हें नलिनी पदमकोश कहा जाता है। आचार्य कीर्तिधन का मत है– जब दोनों पद्मकोश हस्तों को स्कन्धों एवं कुचों के निकटस्थ कर घुमाया जाता है तब उन्हें **पद्मवर्तनिक्ता** भी कहा जाता है। एक हाथ को अरालमुद्रा में दूसरें को अलपल्लव मुद्रा में बनाकर जब दोनों स्वस्तिक का आकार धारण करें, तो दोनों हस्त **पुष्टि स्वस्तिक** कहे जाते है। अथवा जब दोनों कपित्थ हस्तो को मुष्टि और शिखर मुद्राओं में कर स्वस्तिक मुद्रा में अवस्थित किया जाय, आचार्य कीर्तिधर के मत में जब एक पुष्टिहस्त कुंचित और दूसरा खटकास्य हस्त अञ्चित हो तो उन्हें **मुष्टि स्वस्तिक** नाम दिया जाता है। मुष्टि स्वस्तिक हस्त कतिपय विद्वानो के मत में **खड़गवर्तनिका हस्त** कहा जाता है। जब दोनों हाथों से कुहनी पर स्वस्तिकयुक्तलता हस्तों का प्रयोग किया जाय तो उन्हें **वलित हस्त** कहा जाता है। एक हंस पक्ष हस्त को जब व्यावृत्त कर वक्ष स्थल पर रख दिया जाय, दूसरे हाथ को इसी मुद्रा में अवस्थित किया जाय, उन्हें **दण्डपक्ष हस्त** कहते है।

दोनों पताक हस्तों को अधोमुखकर कटि पर रख दिया जाय, पश्चात् वे तिरछे होकर तेजी से ऊपर की ओर उड़े अथवा उठें, उन्हें **गरुडपक्षक हस्त** कहा जाता हैं। दोनों अलपल्लव हस्तों को जब उद्वेष्टित क्रिया द्वारा वक्षस्थल पर रखा जाय, फिर कन्धे के समीप उन्हें प्रसरित करदिया जाय तो उन्हें **अलपद्म हस्त** कहते हैं। दोनों हाथों को जब वक्ष तथा कन्धों पर प्रसारित कर, कन्धों के सम्मुख उनकी उंगलियों को कम्पित कर दिया जाय, उन्हें **उल्वण हस्त** कहते हैं। पृथक होकर जब दोनों स्वस्तिक हस्त, हंस पक्ष मुद्रा में अवस्थित हों, तो उन्हें कर स्वस्तिक हस्त कहते हैं। स्वस्तिक हस्तों को जब विच्युत(गिरा) कर दिया जाय तो उन्हें **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है। अन्य आचार्यों के मतानुसार जब हंस पक्ष दोनों हाथो के अग्रभाग नत अथवा उन्नत हों और पराङ्मुख होकर कुचों के अग्रभाग पर स्थित हों तो उन्हें **विप्रकीर्ण हस्त** कहा जाता है। जब बाहु, कुहनी, कन्धा के अग्रभाग में दोनों पताक हस्त हाव–भाव पूर्वक मुड़कर शीघ्र अधोमुख हो जाएँ, तो

वक्रगति वाले उन दोनों हाथों को आविद्ध वक्र हस्त कहा जाता है। दोनों सर्पशीर्ष हस्तों की जब मध्यमा एवं अंगुष्ठ दोनों सटे रहे, तर्जनी बाह्य दिशा की ओर प्रसरित हों, दोनों हाथ चतुष्कोणाकार में क्रमशः फैले हो (तिरछे) तो उन्हें सूच्यास्य कहते हैं। कतिपय आचार्य- (क) दोनों हाथो की पताक मुद्रा बना जब उन्हें व्यावृत्त और परिवृत्त क्रिया से घुमाकर विशेष रूप से प्रसारित कर दिया जाय तो उन्हें सूच्यास्य कहा जाता है। (ख) दोनों ही सर्पशीर्ष हस्तों को स्वस्तिक मुद्रा में परिवर्तित, उनके दोनों अंगुष्ठ मध्य से प्रसरित कर दिया जाय, तो सूच्यास्य हस्त कहा जाता है।

अरालखटकामुख हस्त- प्रथमतः दोनों पताक हस्तों को स्वस्तिकाकार मुद्रा में परिवर्तित कर पृष्ठ भाग की ओर मोड़ दिया जाय, फिर घुमा दिया जाय। पश्चात् दोनों पद्मकोश हस्तों को अलपद्म की भांति, ऊर्ध्व मुखकर, पुनः व्यावृत्त और परिवृत्त कर दिया जाय। पश्चात् बाम अराल हस्त को उत्तान एवं दक्षिण खटका मुख हस्त को चतुरस्त्र और अधोमुख कर दिया जाय। ऐसी अभिनय मुद्रा को अरालखटकामुख हस्त कहते हैं। कभी-कभी स्वस्तिक हस्तों को प्रथमतः अराल तथा खटकामुख बना दिया जाय अथवा दोनों को ही अराल में परिवर्तित कर रेचित किया जाय अथवा पहले खटकामुख बनाकर रेचित किया जाय तो वे अरालखटका मुख हस्त कहे जाते है।

अङ्गाभिनय

अंगाभिनय के अंतर्गत ५ वक्षाभिनय, ५ पार्श्वाभिनय, ५कटि-अभिनय १३पादाभिनय एवं प्रत्यंगाभिनयों में ग्रीवाभिनय९, बाहु-अभिनय१६, उदराभिनय-४, पृष्ठाभिनय-४ ऊरु-अभिनय-५, जंघाभिनय १०, जानुअभिनय ७, मणिबन्ध अभिनय ५।

भवों और पलको के संयोग से दृष्टि की अनन्त कोटियां हैं। स्वयं, स्वयं भूः, दृष्टि की कोटियों का वर्णन करने में सक्षम नहीं हैं। देही-जन की क्या सामर्थ्य। दृष्टियों का अभिव्यंजन विभिन्न रसों के अनुसार ही सम्भव। हस्ताभिनय में संदर्शित होता है। मुख्यतः दृष्टि के ३६ भेद रस, स्थायी रस, सञ्चारी भावो के अनुसार समन्वित। रसाश्रिता अथवा रसजा आठ- भयानका, वीभत्सा और अद्भुता। स्थायी भावाश्रित अथवा स्थायी भावजा- स्निग्धा, हृष्य, दीना, क्रुद्धा, दृप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता और विस्मिता।

सञ्चारी भावाश्रिता अथवा सञ्चारी भावजा- शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जिता, म्लाना, शंकिता, विषण्णा , मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्मा, ललिता,वितर्किता, अर्धमुकुला, आकेकरा, विभ्रान्ता, त्रस्ता, विलुप्ता, विक्रोशाएवंमदिरा।

इस परिगणनानुसार रसाश्रिता ८ स्थायी भावजा ८ तथा सञ्चारी भावजा २०, कुल ३६ कोटियां।

रसजा प्रमुख दृष्टियाँ

यदि संकुचित पलकों की दृष्टि क्रमशः तीव्र, मध्य एवं मन्दगति से किञ्चित् भीतर की ओर चली जायं, पुतलियां विस्मयपूर्ण रीति- गति में घूमती हो तो वह हास्या, आश्चर्यान्विता-भावों के अभिनयावसर के लिए प्रयोज्या।

जो दृष्टि नीचे झुकी हो, पलक ऊपर उठी हो, अश्रु निकलते हों, शोकवशात् जिसकी पुतली शिथिल पड़ गयी हो, वह करुण दृष्टि, करुण रस के अभिनयमें प्रयोज्या।

रुक्ष, क्रूर, स्थिर पलकों वाली, चकित, उग्र पलकों वाली, अरुण तीक्ष्ण, भयानक भृकुटिवाली रौद्री दृष्टि, रौद्र रस के अभिनयार्थ प्रयोज्या।

चञ्चल, फड़कते हुए तारों वाली, स्तब्ध, खुले पलकों वाली, देखने पर वह पलायन कर देने वाली दृष्टि भयानका। यह भयानक रस की अभिव्यंजना के लिए प्रयोज्या।

ईषत् संकुचित भौहों के अग्रभाग वाली, आश्चर्य गति में घूमती पुतली वाली सौम्य और विकच से सम्पन्न दृष्टि, अद्भुत रस के अभिनय में प्रयुक्त होने वाली **अदभुता दृष्टि** कहलाती है।

दृश्य पदार्थ का पान-सी करती, अति स्वच्छ-विकसित, भ्रू-भंग और कटाक्षयुक्त, कामोत्पादक (कामिनियों में शरीर की शोभा का उत्कर्ष, बढ़ाने वाली-शोभा-उत्कर्षधायिका हो) वह **कान्ता दृष्टि** है।

हास्ययुक्त आकृति वाली, विशद तारों वाली, कपोलद्वय को उत्फुल्ल करने वाली चंचल, किंचित् संकुचित कोरोंवाली निमेष दृष्टि **हृष्टा** हास्यरस के अभिनय में प्रयोज्या।

भय से बाहर निकली हुई-सी मध्य भागवाली, दोनों पलकों की खुली अवस्था वाली, भय से कम्पित तारोंवाली **भयग्रस्ता दृष्टि**, भयान्विता कही जाती है।

प्रसरित दोनो पलकोंवाली, अत्यन्त घूमनेवाले तारोंवाली, प्रफुल्ल समदृष्टि वाली स्थिति की दृष्टि **विस्मिता** कही जाती है। विस्मयभावों की अभिव्यञ्जना में प्रयोज्या।

विस्मयसंचारीभावजा

भौहों से किंचित् संकुचित अग्रभाग वाली, लज्जावनत पुतलिओं वाली, भयातुरा, ऊपर उठी हुई पलकों वाली दृष्टि, **लज्जिता** कही जाती है। स्त्रियों के लज्जाभाव के प्रकटनार्थ अभिनय-प्रयोज्या।

नमित पलकों वाली, निश्चल पुतलियों वाली, प्रसरित दोनों पलकों वाली, पलक भांजने वाली दृष्टि **विषण्णा** कही जाती है। यह विषाद- भावों के अभिव्यंजनार्थ अभिनय-प्रयोज्या।

स्मिति पूर्णा, संकुचित कोरोवाली, मधुर, भ्रूमंगिमायुक्त, विकसित कामभाव- प्रकटायिका लम्बी दृष्टि, **ललिता** कही जाती है। ललित भावों के अभिव्यंजन हेतु धीर-पुरुष प्रयोज्य स्वीकार करते है। जिसकी पलकें तथा कोर किंचित् संकुचित, बार बार घूमने वाली पुतलियां, तिरछे चितवन-युक्त अर्धविकसित दृष्टि **आकेकरा** कही जाती है। कठिनाई से देखने, स्नेहपूर्वक दृष्टिपात के लिए प्रयोज्या। सदा विश्रान्ति-विहीन, विकसित पुतलियों वाली जो प्रसरित हो, विद्वान् उसे **विभ्रान्ता** दृष्टि नाम देते है। भ्रान्ति, आवेश आदि भाव प्रदर्शन के लिए प्रयोज्या। क्रमशः क्षुब्ध, स्थिर, नतपलकों वाली दृष्टि **विलुप्ता** कही जाती है। चपलता, उन्माद, पीडन, कष्ट आदि भावाभिनय में प्रयोज्या। भय से घूमती पलकें, कम्पित पुतलियां, मध्यभाग विकसित हो, वह **त्रस्ता**

दृष्टि है। यह त्रास के अभिनय में प्रयोज्या। दोनों पलकों के अग्रभाग विकसित, पुतलियाँ घूमती हों, निमेष पलकें, अत्यन्त विकसित दृष्टि विकोशा नाम से अभिहित होती है। भयंकर दर्शन, विज्ञान पांडित्य, क्रोध तथा गर्व भावों की अभिव्यंजना के लिए प्रयोज्या।

त्रिविधा मदिरा

जिसका आभ्यन्तर भाग घूमता हो, जो क्षीण हो, जिसकी पुतलियां किंचित् नतहों, जो विकसित और चंचल हो, उसे मदिरा दृष्टि कहते है। जिसकी पलक किंचित् पतित हो, पुतली किंचित घूमती, अस्थिर गति, बरौनी(भौंह) के अग्रभाग से पुनः-पुनः पीड़ित हो, वह भी मदिरा है। नीचे की ओर संचरणशीला, पुतली अल्पदृष्टिगोचर पलक मारने वाली, उस दृष्टि को भी मदिरा नाम दिया जाता है।

ये तीनों मदिरा दृष्टियां क्रमशः धीर-पुरूषों के मत से – पूर्णमद के अभिनय में, मध्यम मद- अभिव्यंजनार्थ, एवं अधम मद के अभिनय में प्रयोज्या हैं। अन्ततः छत्तीस प्रकार के दृष्टि-अभिनय परिगणित।

□□

भ्रू (भौ) अभिनय की ७, पलकों की नौ एवं पुतलियां की भी ९ कोटियां

सहजा, रेचिता, उत्क्षिप्ता, कुंचिता, पतिता, चतुरा तथा भ्रूकुटी।

सहजभावो के अभिनय में प्रयोज्या प्रकृतावस्था में स्थित रहने वाली भ्रू (भौ) सहजा नामित है। ललित भावो के अभिव्यंजन में प्रयोज्या, एक ही भौं सुन्दर रीति से ऊपर उठायी जाने को रेचिता कहते हैं। मनीषियों के मत में- स्त्रियों के कोप, तर्क- वितर्क, श्रवण, आत्मदर्शन, लीला तथा अवज्ञा-भावों के अभिव्यंजन में प्रयोज्या। भौं का स्वरूप-भ्रुवों को क्रमशः अथवा एक के साथ दूसरी(साथ ही) को ऊपर उठाया जाय, उसे उत्क्षिप्ता नाम दिया गया है। एक या दोनो भ्रुवों को मृदु रीति से टेढ़ा कर दिया अथवा नत कर दिया जाय तो वह कुंचिता कहलाती है। आचार्यों के मतानुसार-क्रीड़ा, मनरंजन, किलकिंचित, मोटटायित एवं कुट्टमित के अभिनय में प्रयोज्या।

नायिका जिसमें एक साथ कई भाव प्रकटाये वह किलकिंचित् हाव, चेष्टा करने पर भी जिसमे नायिका के अनुराग भाव छिपने के स्थान पर प्रकट हो जाय, उसे मोट्टायित हाव कहा जाता है। उसी प्रकार कुट्टमित भी एक हाव है, नायिका, उसमें सुखानुभव-काल में दुःख चेष्टा प्रकटाती है।

दोनों भ्रू एक साथ अथवा पृथकतः एक-एक करके नत कर दी जाय तो उसे पतिता भ्रु कहते हैं। हास, घ्राण, विस्मय, क्रोध, हर्ष तथा घृणा के अभिनय में यह पतिता प्रयोज्या है। जो किंचित् चलयमान, आलस्ययुक्त हो, दूसरी भ्रू-संग प्रसरित हो, उसे चतुरा भ्रू कहते हैं। कोमल स्पर्श, ललित वस्तु एवं शृड़गारिक अभिनय में यह प्रयोज्या। अन्य अभिनयों में भी प्रयोज्या सम्भव। एक भ्रू द्वितीया भ्रू-संग यदि मूल के ऊपर उठा दी जाय, तबवह भृकुटी कही जाती है। क्रोधाभिनय में यह प्रयोज्या।

पलकाभिनय

सम, विवर्तित, प्रसृत, कुंचित, पिहित, स्फुरित, उन्मेषित, विनिमेषित एवं वितालित ९ प्रकार की पलकें।

प्रकृतावस्था में स्थित पलकें सम कही जाती है। स्वाभाविक स्थिति के प्रदर्शनार्थ प्रयोज्या। भ्रमित अथवा अस्त-व्यस्त पलकें विवर्तित नामित है। क्रोधाभिनय में प्रयोज्या। लम्बायमान अथवा प्रसरित पलकें प्रसृत अभिसंज्ञित होती है। विस्मय, हर्ष और वीरता के अभिनय में प्रयोज्या। सङ्कुचित पलकें कुंचित नाम से अभिहित की जाती हैं। रस, गन्ध, अनिष्ट, निरीक्षण और स्पर्श

के अभिनय में प्रयोज्या हैं। बन्द दोनों पलकें **पिहित** अभिहित होती हैं। मूर्च्छा, शमन, नेत्रपीडन, अतिवृष्टि, उष्णवात, धूम्र, अंजन तथा पीडन के अभिनय में प्रयोज्या। फड़कने वाली दोनो पलकों को **स्फुरित** कहा जाता है। ये ईर्ष्या के अभिनय में प्रयोज्या। दोनो उन्मीलित पलकें, उन्मीषित एवं निमीलित पलकें निमेषित कही जाती हैं। आचार्यों के मतानुसार क्रोध के अभिनय में प्रयोज्या। उपरिपलकों से यदि अधोस्थित पलकों पर चोट की जाय, तो **वितालित** कहलाती हैं। अन्य आचार्यों के मत में अत्यन्त प्रसरित पलकें **वितालित** हैं। अदृश्य वस्तु के अभिनय में प्रयोज्या।

अक्षिपुत्तलिकाएं

आचार्यों के अभिमत में ९ आत्मनिष्ठ पुत्तलिकाएं– प्राकृत, भ्रमण, पात, वलन, चलन, प्रवेशन, समुदवृत्त, निष्क्राम तथा विवर्तन।

पुत्तलिकाओं की समवस्थित, स्वाभाविकस्थिति **प्राकृत** कहलाती हैं। पलकों में अन्दर पुत्तलिकाओं को मण्डलाकार घुमाना **भ्रमण-कर्म** कहा जाता है। पुत्तलिकाओं को नीचे पतित करना **पात** कहा जाता है। पुत्तलिकाओं को तिरछा घुमाना **वलन** है। पुत्तलिका कम्पित होना **चलन** कहा जाता है। पुत्तलिकाओं को पलक के अन्दर प्रविष्ट होने की क्रिया को **प्रवेशन** कहते हैं। पुत्तलिका ऊपर घूमना अथवा उन्नत करना **समुद्वृत्त** कहा जाता है। पुत्तलिकाओं को बाहर निकालना **निष्क्राम** कहा जाता है। पुत्तलिकाओं का कटाक्ष करना **विवर्तन** है।

आचार्यों ने पुत्तलिकाओं के विषयाभिमुख(विषयानुसार) अवलोकन की आठ कोटियां बतायी हैं–

पुत्तलिकाओं को मध्य में अवस्थित कर सौम्य दृष्टि से अवलोकन को **सम** कहा जाता है। यदि पुत्तलिकाओं को भौहों की ओर घुमाकर तिरछी चितवन से अवलोकन किया जाय तो उसे **सात्विक** कहते हैं।

चिरकाल पर्यन्त सम्पूर्णतः जो देखने की लालसा भीतर ही स्थित रहती है, **निर्वर्णना** कही जाती है एवं उस निर्वर्णन से युक्त दर्शन **अनुवृत्त** नामित हैं। नीचे पृथ्वी की ओर देखना **अवलोकित** संज्ञित हैं। पृष्ठ भाग से निरीक्षण करना अथवा पुत्तलिकाएं घुमाकर पीछे देखना **विलोकित** कहलाता है।

प्रकृतावस्था में स्थित रहकर दृष्टिपात करना **आलोकित** कहा जाता है। ऊपर की ओर जो दृष्टिपात किया जाता है, सज्जन पुरुष द्वारा उसे **उल्लोकित** कहा जाता हैं। पार्श्व प्रदेश से दृष्टिपात करने को विद्वान् जन **प्रविलोकित** नाम देते हैं।

उपांगाभिनय

हस्त-संचालनः तेईस प्रकार।

उत्तान अधोमुख, पार्श्वगत अन्य मत – अग्रग, अधस्तल, उत्तान। प्रथम तीन भेदों में ही, दूसरे मत के ३ भेदों का प्रथम तीन में अन्तर्भाव सम्भव। आगे बढ़कर कतिपय आचार्य– उत्तान, अधस्तल, पार्श्व मुख, अग्रतल, स्वसम्मुख तल, पार्श्व तल, पार्श्वगत अग्रग, ऊर्ध्वग, अधोगत,

सम्मुख, सम्मुखागत, ऊर्ध्वमुख, अधोमुख, तथा पराङ्मुख। कुल तेईस प्रकार।

हस्तकरण हस्तचेष्टाएं- शास्त्र-विधि-निष्पन्न हस्ताभिनय के लिए जिन हस्त मुद्राओं का मुख्यतः (विशेष रूप से) प्रयोग होता हैं उन्हें हस्तकरण नाम दिया जाता हैं। हस्तकरण के भेद-

हस्तकरण के चार प्रकार- आवेष्टित, उदवेष्टित, व्यावर्तित और चतुर्थ परिवर्तित नृत्याचायो के अनुसार- अंगुष्ठ से अतिरिक्त चारो उंगलियां मोड़ ली जाय, हथेली को सम्मुख कर हाथ को भी पार्श्व से वक्ष तक पहुँचा दिया जाय, वह **आवेष्टितकरण** कहा जाता है। आवेष्टितकरण की स्थिति में हथेली की ओर खुली ऊँगलियां क्रमशः हथेली से (खोलकर) बाहर निष्कासित कर दी जायँ तथा हाथ को भी वक्ष से पृथक तो वह **उदवेष्ठित** करण कहा जाता है। कनिष्ठिका से तर्जनी तक उंगलियां क्रमशः हथेली की ओर झुकायी जायँ उस स्थिति को आचार्यगण **व्यावर्तित** करण कहते है। कनिष्ठका से तर्जनी तक सब उंगलियां क्रमशः एक-एक कर बाहर की ओर खुले, उस स्थिति को आचार्यों के मत में **परिवर्तित** करण कहते हैं।

हस्त-संचालन

कुशल अभिनेता अपनी बहुविधभाव-भंगिमाओं द्वारा बाहुओं को गति प्रदान करता है, तो अनेकशः संचालन क्रियाएं उत्पन्न होती है। आचार्यों ने उन अनकेशः को संख्या-निबद्ध करने का प्रयास किया है- वह संख्या पचास हैः-

१. विश्लिष्टवर्तित, २. वेपथुव्यञ्जक, ३. अपविद्ध, ४. .लहचक्रसुन्दर, ५. वर्तनास्वस्तिक, ६. संमुखीनरथाङ्ग, ७. पुरोदण्डभ्रम, ८. त्रिभंगीवर्णसारक, ९. देल, १०. नीराजित, ११. स्वस्तिकाश्लेष, १२. वामदक्षतिरश्चीन, १३. वर्तनाभरण, १४. मिथोंसवीक्षाबाह्य, १५. मौलिरेचितक, १६. मणिबन्धासिकर्ष, १७. अंसवतुनिक, १८. आदिकूर्मावतार, १९. कलविङ्कविनोद, २०. मण्डलाग, २१. चतुष्पत्राब्ज, २२. बालव्यञ्जन चालन, २३. विरुडिबन्धन, २४. विशृगाटकबन्धन, २५. कुण्डलिचारक, २६. घनराकर्षण, २७. हारदामविलासक, २८. समप्रकोष्ठ चलन, २९. मुरजाडम्बर, ३०. तिर्यग्यतस्वस्तिकाग्र, ३१. देवोपहारक, ३२. अलातचक्र, ३३. साधारण, ३४. उरभ्रकसंबाध, ३५. मणिबन्धगतागत, ३६. तार्क्ष्यपक्षविनोदक, ३७. धनुवल्लीवितानक, ३८. तिर्यकताण्डव, ३९. व्यस्तोत्प्लुतिनिवर्तक, ४०. कररेचितवज्र, ४१. मण्डलाभरण, ४२. अष्टबन्धविहार, ४३. शरसन्धान, ४४. पर्यायगजदन्तक, ४५. अंसपर्यायनिर्गत, ४६. त्रिकोणस्वस्तिक, ४७. रथनेमिसम, ४८. लतावेष्टित, ४९. कर्णयुग्मप्रकीर्णक, ५०. नवरत्नमुख।

मतान्तरों के परिणामस्वरूप् संचालन-संख्या अधिवृद्ध होकर पचपन हो जाती है। वह पाँच-दिग्वर्ष, अनङ्गाङ्गमोटन, तोरण, अनङ्गोद्दीपन तथा मुरजकर्तरी।

वक्षस्थल पर दोनो हाथों को क्रमशः हिलाकर मण्डलाकर बना, हाव-भावपूर्वक स्कन्धतले जाकर, भीतर कर, पश्चात् चारों ओर से घुमाकर, अधोमुख कर दिया जाय उसे अनङ्गोददीपन चालन कहते हैं। पाँचवां चालन दोनों हाथ स्तन प्रदेश से लेकर कन्धे तक मण्डलाकार स्थिति में घुमा वक्ष स्थल पर लाया जाय, एक हाथ को बगल से पुनः पुनः फेंककर स्थल पर लाया जाए,

एक हाथ को बगल से पुनः पुनः फेककर नीचे किया जायँ एवं दूसरे को मण्डलाकार स्थिति में घुमा कम्पित किया जाय, तत्पश्चात् दोनो हाथ कटि पर रख, एक दूसरे के आमने-सामने कर दिया जाय। इस क्रिया को मुरजकर्तरी चालन कहते हैं। इस प्रकार ये मनहर चालन क्रियाएं नृत्य के प्राण हैं।

चारी

नृत्यावसर में पैर, जंघा, उरु और कटि-संग चेष्टाकृति विशेष द्वारा भावाभिव्यंजन को चारी कहा जाता है। चारिओं की रचना अंगो के परस्पर प्रचार प्रसार के अनुसार सम्भव हैं। एक चरण का संचरण चारी दोनो पैरों का संचरण करण तीन करणो को एक साथ संचरण खण्ड एवं तीन अथवा चार खंडो का संचरण मण्डल।

भूमिचारी, आकाशचारी और देशी चारी क्रमशः सोलह, सोलह एवं पैंतीस भेद हैं:-

भूमिचारी के सोलह भेद होते हैं-

१. समपादा, २. अड्डिता, ३. बद्धा, ४. .स्पन्दिता, ५. विच्यवा, ६. जनिता, ७. उत्सन्दिता, ८. चाषगति, ९. अध्यर्धिका, १०. एलकाकीडिता, ११. शकटास्या, १२. उरूद्वृत्ता, १३. स्थितावती, १४. अपस्पन्दिता, १५. समोत्सरितमत्तल्ली, १६. मत्तल्ली।

आकाशचारियों के भी सोलह प्रकार होते हैं : १. अतिक्रान्ता, २. अपक्रान्ता, ३. भ्रमरी, ४. मृगप्लुता, ५. पार्श्वक्रान्ता, ६. ऊर्ध्वजानु, ७. भुजंगत्रासिता, ८. अलाता, ९. दण्डपादा, १०. विद्युद्भ्रान्ता, ११. सूची, १२. दोलपादा, १३. उद्वृत्ता, १४. आविद्धा, १५. नूपुरपादिका, १६. आक्षिप्ता।

देशी नाम से प्रसिद्ध चारियों के पैंतीस भेद होते हैं : १. रथचक्रा, २. तलोद्वृत्ता, ३. मराला, ४. पार्ष्णिरिचिता ५. परावृत्ततला, ६. तिर्यङ्मुखा, ७. नूपुरविद्धिका, ८. कातरा, ९. करिहस्ता, १०. हरिणत्रासिका, ११. अर्धमण्डलिका, १२. उरुताडिता, १३. मदालसा, १४. संचारिता १५. उत्कुञ्चिता, १६. अपकुञ्चिता, १७. स्फुरिता, १८. स्तम्भकीडनिका, १९. तिर्यक्कुञ्चिता, २०. तलदर्शिनी, २१. खुत्ता, २२. लंघितजंघा, २३. स्वस्तिका, २४. कुलीरिका, २५. निकुट्टक, २६. पुराटिका, २७. अर्धपुराटिका, २८. स्फुरिका, २९. सारिका, ३०. लताक्षेप, ३१. अड्डुस्खलितिका, ३२. ऊरुवेणी, ३३. विशिल्ष्या, ३४. समस्खलितिका और, ३५. संघट्टिता।

□□

अभिनय (नृत्य) के करण

हस्त–पाद आदि के संचालन से अविच्छिन्नतः रस की अभिभावनकरी क्रिया अभिनय का करण कहलाती है। ये एक सौ चार प्रकार के कहे गये हैं–

उनके नाम हैं १. तलपुष्पपुट, २. वक्षःस्वस्तिक, ३. वर्तित, ४. मण्डलस्वस्तिक, ५. लीन, ६. उन्मत्त, ७. वलितोरु, ८. स्वस्तिक, ९. अर्धस्वस्तिक, १०. दिक्स्वस्तिक, ११. पृष्ठस्वस्तिक, १२. आक्षिप्तरेचित, १३. अलात, १४. भुजंगत्रासित, १५. कटीसम, १६. कटीच्छिन्न, १७. घूर्णित, १८. निकुञ्चित, १९. निकुट्टक, २०. अर्धनिकुट्टक, २१. विक्षिप्तक, २२. अपविद्ध, २३. समनख, २४. स्वस्तिकरेचित, २५. मत्तल्लि, २६. अर्धमत्तल्लि, २७. वलित, २८. अर्धरेचित, २९. ऊर्ध्वजानु, ३०. कटिभ्रान्त, ३१. छिन्न, ३२. पादापविद्धक, ३३. भ्रमर, ३४. दण्डपक्ष, ३५. नूपुर, ३६. ललित, ३७. व्यंसित, ३८. चतुर, ३९. करन्त, ४०. भुजंगत्रस्तरेचित, ४१. भुजंगाञ्चित, ४२. आक्षिप्त, ४३. उद्घट्टित, ४४. दण्डरेचित, ४५. वृश्चिक, ४६. वृश्चिकरेचित, ४७. वृश्चिककुट्टित, ४८. लतावृश्चिक, ४९. वैशाखरेचित, ५०. चक्रमण्डल, ५१. आवर्त, ५२. कुञ्चित, ५३. दोलापाद, ५४. तलविलासित, ५५. विवृत्त, ५६. विनिवृत्त, ५७. ललाटतिलक, ५८. विवर्तित, ५९. अतिक्रान्त, ६०. विद्युद्भ्रान्त, ६१. निशुम्भित, ६२. उरीमण्डल, ६३. विक्षिप्त, ६४. पार्श्वनिकुट्टक, ६५. तलसंस्फोटित, ६६. गण्डसूचि, ६७. समचि, ६८. अर्धसूचि, ६९. गजक्रीडितक, ७०. पार्श्वजानु, ७१. गरुडप्लुत, ७२. मृध्रावलीनक, ७३. दण्डपाद, ७४. सन्नत, ७५. सर्पित, ७६. मयूरललित, ७७. सूचीविद्ध, ७८. प्रेङ्खोलित, ७९. स्खलित, ८०. परिवृत्त, ८१. करिहस्त, ८२. प्रसर्पित, ८३. पार्श्वक्रान्त, ८४. निवेश, ८५. नितम्ब, ८६. हरिणप्लुत, ८७. सिंहविक्रीडित, ८८. सिंहाकर्षित, ८९. जनित, ९०. अवहित्थ, ९१. उद्वृत्त, ९२. तलसंघट्टित, ९३. लोलित, ९४. शकटास्य, ९५. वृषभक्रीडित, ९६. एलकाक्रीडित, ९७. विष्कम्भ, ९८. उपसृत, ९९. विष्णुकान्त, १००. अपक्रान्त, १०१. ऊरूद्वृत्त, १०२. अञ्चित, १०३. सम्भ्रान्त, १०४. मदस्खलितक, १०५. अर्गल, १०६. रेचकनिकुट्टक, १०७. नागापसर्पित, १०८. गंगावतरण।

अङ्गविक्षेप (अङ्गहार)

हार का अर्थ प्रयोग है। अंग हार का शब्दिक अर्थ प्रयोग है। दो करणों के योग से मातृका, तीन करणों के योग से कलाप, चार करणों के योग से संघात निर्मित होता है।

अङ्गहार (विक्षेप) संख्या बतीस है-

१. स्थिरहस्त, २. पर्यस्त, ३. सूचीविद्ध, ४. अपराजित, ५. वैशाखरेचित, ६. पार्श्वस्वस्तिक, ७. भ्रमर, ८. आक्षिप्तक, ९. परिच्छिन्न, १०. मदविलसित, ११. आलीढ, १२. आच्छुरित, १३. पार्श्वच्छेद, १४. अपसर्पित, १५. मत्ताकीड, तथा १६. विद्युद्भ्रान्त,-सोलह अंगहार चतुरस्त्र मान के अनुसार है। १७. विष्कम्भापसृत, १८. मत्तस्खलित, १९. गतिमण्डल, २०. अपविद्ध, २१. विष्कम्भ, २२. उद्घट्टित, २३. आक्षिप्तरेचित, २४. रेचित, २५. अर्धनिकुट्ट, २६. वृश्चिकापसृत, २७. अलातक, २८. परावृत, २९. परिवृत्तरेचित, ३०. उद्वृत्तक, ३१. सम्भ्रान्त, ३२. स्वस्तिकरेचित।

त्र्यस्त्रमान अङ्गहार

रेचितः स्वरूप

पहले स्वस्तिकरेचित, पश्चात् अर्धरेचित, तदनन्तर वक्षःस्वस्तिक, उन्मत्त, आक्षिप्तरेचित, अर्धमत्तल्लि, रेचकनिकुट्टक, भुजंगत्रस्तरेचित, नुपूर, वैशाखरेचित, भुजंगाञ्चित, दण्डरेचित, चकमण्डल, वृष्णिकरेचित, व्यंसित, विवृत्त, विनिवृत्त, विवर्तित, गरुडलुप्त, मयूरललित, सर्पित स्खलित, प्रसर्पित, तलसंघट्टित, वृषभकीडित और लोलित- छब्बीस करणों को कमशः चारों दिशाओं में रचकर नर्तक इनके विषम भाग करके घुमाते हुए किनारे में ले आये। तदुपरान्त उरोमण्डल और कटिच्छिन्न करणों की रचना करे; ऐसा करने से रेचित नामक अंगहार निर्मित होता है।

इसी प्रकार आक्षिप्त रेचित अङ्गहार की रचना-प्रक्रिया-पहले चतुरता से स्वस्तिकरेचित की रचना की जाय; उसके पश्चात् पृष्ठस्वस्तिक, कटीच्छिन्न, घूर्णित, भ्रमर, वृश्चिकरेचित, पार्श्वनिकुट्टक, उरोमण्डल, सन्नत, सिंहाकर्षित, नागापसर्पित, वक्षःस्वस्तिक, दण्डपक्ष, ललाटतिलक, निशुम्भित, विद्युद्भ्रान्त, गजकीडित, नितम्ब, विष्णुक्रान्त, ऊरूद्वृत्त, आक्षिप्त, ऊरोमण्डल, नितम्ब, करिहस्त और कटीच्छिन्न अथवा उससे पृथक् भी-इन पचीस करणों से आक्षिप्तरेचित अंगहार रचित होता है। यह पचीस संख्या तभी सम्भव् जब नितम्ब तथा ऊरोमण्डल की पुनरावृत्ति न हो।

एवमेव क्रमशः उद्वृत्त, उद्घट्टित, अलात, संभ्रान्त, अर्धनिकुट्ट, परिवृत्त रेचित, स्वस्तकरेचित, विष्कम्भापसृत, विष्कम्मक, गतिमण्डल, वृश्चिकापसृत, मत्तस्खलित, कुल बत्तीस अंगहारों की रचना।

हस्त, कण्ठ, कटि एवं पाद् विशेष-जनित चार प्रकार के रेचक-

हंस पक्ष मुद्रा की स्थितिमें यदि दोनों हाथों को क्रमशः क्षिप्रगति में चारों ओर घुमाया जाय तो वह पाणिचेरक नामित किया जाता है।

कण्ठको यदि तिर्यक रूप् में कम्पित कर, घुमा दिया जाय, तो उसे रेचक विदों ने कण्ठ रेचक कहा दिया है।

कटि रेचक, वह है जब कटि को चारों ओर घुमाया जाय।

पाद रेचक

अंगुष्ठ के अग्रभाग एवं एड़ी के वाह्य-अभ्यन्तर निरन्तरता से नमित उत्थित की गति में स्थित कर दिये जायँ, वह पाद रेचक है।

मण्डल अर्थात् गति

आकाश गत तथा भूमिगत दो मण्डल (गति) दोनों के पृथकतः दस-दस रूप-

विद्वानों ने आकाशगत मण्डल के दस भेद बताये हैं :

१.अतिक्रान्त, २. वामविद्ध, ३. क्रान्त, ४. ललितसञ्चर, ५. सूचीविद्ध, ६. अलात, ७. विचित्र, ८. विहृत, ९. ललित, और १०. दण्डपाद।

भूमिगत मण्डल के दस भेद-

१. भ्रमर, २. शकटास्य, ३. पिष्टकुट्टक, ४. अड्डित, ५. समोत्सरित, ६. आवर्त, ७. एलकाकीडित, ८. आस्कन्दित, ९. चाषगति, और१०. अध्यर्ध।

अतिक्रान्त-परिचय

दाहिना पैर जनित तथा शकटास्य करणों में अवस्थित हो और बायाँ पैर अलात करण बना हो; फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त तथा बायाँ पैर सूची और भ्रमर बना हो; पुनः दाहिना पैर उद्वृत्त और बायाँ पैर अलातहो; दोनों चरण छिन्नकरण का सहारा लिये हों; तदनन्तर वाम अंग में भ्रमरी नामक चारी की रचना की जाय; फिर बायाँ पैर अतिक्रान्त करण और दहिना पैर दण्डंपाद बनाया जाय; तो ऐसी क्रिया को विद्वानों ने अतिक्रान्त आकाशमण्डल कहा है।

चारियों का क्रमशः क्रियान्वयन (चमत्कार प्रदर्शनार्थ) ही वस्तुतः (गति) मण्डल है। इसके भौम, आकाशिक दो भेद। पुनः मौम का दश रूप- १. भ्रमर,२. आवर्त, ३. आस्कन्दित, ४. अड्डित, ५. समोस्सरित, ६. अत्यर्ध, ७. एलकाकीडित, ८. शकटास्य, ९. पिष्टकुट्ट, और १०. चाषगत।

आकाशिक मण्डल के भी कमशः दस नाम हैं : १.अतिक्रान्त, २. दण्डपाद, ३. क्रान्त, ४. विहृत, ५. सूचीविद्ध, ६. वामविद्ध, ७. ललितसञ्चर, ८. विचित्र, ९. ललित, और १०. अलात।

वामविद्ध मण्डल (गति)-प्रक्रिया

दाहिना पैर सूची हो और बायाँ पैरअतिक्रान्तहो; फिर दाहिना पैर दण्डपाद, बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमर हो; पुनः दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त हो बायाँ पैरआक्षिप्त; दाहिना पैर क्रमशः दण्डपाद तथा ऊरुद्वृत्त हो एवं बायाँ पैर सूची तथा भ्रमर हो; फिर दाहिना पैर अलात और पार्श्वक्रान्त हो और, बायाँ पैर अतिक्रान्त हो; तो ऐसी स्थिति में वामविद्ध आकाशमण्डल निर्मित होता है।

दक्षिण पाद प्राधान्य अन्य मण्डलों-क्रान्त, नकितसञ्चर, सूचीवद्ध आलात, विचित्र, विहत, ललित एवं दण्डपाद में से कतिप्य-

ललितसञ्चर

दाहिना पैर क्रमशः ऊर्ध्वजानु तथा सूची करण बना हो और बायाँ पैर अपक्रान्त हो; तदनन्तर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त और बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमर रूप में हो; फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त और बायाँ अतिक्रान्त हो; पुनः दाहिना पैर सूची तथा बायाँ पैर अपकान्त हो; फिर दाहिना पैर पार्श्वक्रान्त और बायाँ पैर अतिक्रान्त हो; दोनों पैर छिन्न करण का आश्रय लिये हुए हो; अन्त में बायें पैर से बाहर भ्रमरी नामक चारी बनायी जाय; तो ललितसञ्चर आकाशमण्डल बनता है,

विचित्र आकाशीयमण्डल

दाहिना पैर जनिता, ऊरुद्वृत्ता, विच्यवा, सात स्थितावती और दो आवर्त चारियों के भेद से युक्त हो; बायाँ पैर स्पन्दिता चारी से युक्त हो, दाहिना पैर पार्श्वक्रान्ता चारी से युक्त हो; फिर बायाँ पैर भुजंगत्रासिता संगित हो; दाहिना पैर अतिकान्ता – युक्त हो, बायाँ पैर उद्वृत्ता से युक्त हो; पुनः दाहिना पैर अलात युक्त हो; फिर बायाँ पैर पार्श्वक्रान्ता से युक्त हो जाय तो विचित्र आकाशमण्डल बनता है।

आठवें विहत का परिचय धीर विद्वज्जनों के अनुसार –

दाहिना पैर विच्यवा चारी से युक्त होकर क्रमशः स्पन्दिता तथा पार्श्वक्रान्ता हो; तदनन्तर बायाँ पैर स्पन्दिता से युक्त–दाहिना पैर उरुद्वृत्ता – युक्त हो; बायाँ पैर अलात से युक्त हो, दाहिना पैर सूची से फिर बायाँ पैर पार्श्वकान्ता से, दाहिना पैर आक्षिप्त से होकर इस प्रकार दायें–बायें घूमकर दण्डपादा से युक्त हो जाय; फिर बायाँ पैर क्रमशः सूची तथा भ्रमरी से, दाहिना पैर भुजंगत्रासिता से और बायाँ पैर अतिक्रान्ता से युक्त हो; तो विहृत आकाशमण्डल है।

दसभूमिगत मण्डलों– भ्रमर, शकटास्य, पिष्टकुट्टक, अड्डित, समोत्सरित, आवर्त, एलकाकीडित, आस्कन्दित, चाषगत एवं अध्यर्ध में से कतिपय का अभिज्ञान–

भ्रमर– दाहिना पैर जनिता नामक चारी से, बायाँ पैर सपन्दिता से पुनः दाहिना भ्रमरी से युक्त हो, बाँया स्पन्दिता से फिर दाहिना शकटास्या से, बाँया चाषगति से युक्त होः तत्पश्चात् दाहिना भ्रमरी से युक्त और बाँया स्पन्दिता से युक्त होः तो धीर पुरूषों ने उसे भ्रमरी भूमिमण्डल कहा है, जो शंकर को प्रिय है।

अड्डित– दाहिना पैर क्रमशः उद्घट्टिता बद्ध, समोत्सरितमत्तल्लि, अर्धमत्तल्लि तथा अपक्रान्ता नामक चारियों से युक्त हो और बायाँ पैर क्रमशः उद्वृत्ता, विद्युद्भ्रान्ता, भ्रमरी तथा स्पन्दिता से युक्त होः दाहिना पैर शकटास्य तथा चाषगति से युक्त होकर दो बार प्रयुक्त हो तथा बायाँ पैर क्रमशः समोत्सारितमत्तल्लि, मत्तल्लि तथा भ्रमरी से युक्त हो और दाहिना पैर स्पन्दिता से युक्त होकर पृथ्वी पर चोट करेः तो अड्डिता भूमिमण्डल है।

छठा है– आवर्त जिसकी प्रक्रिया दाहिना पैर जनिता चारी से युक्त हो तथा बायाँ स्थितावर्ता से युक्त होकर शकटास्या, एड़काकीडिता, ऊरूद्वृत्ता, अड्डिता, पुनः जनिता तथा समोरसरितमत्तल्ली से क्रमशः युक्त होः दाहिना पैर शकटास्या तथा ऊरूद्वृत्ता से युक्त हो और बायाँ पैर चाषगति में दो बार युक्त होः पुनः दाहिना पैर स्पन्दिता से तथा बायाँ पैर शकटास्या से युक्त होः फिर दाहिना भ्रमरी से युक्त हो और बायाँ चाषगति से युक्त होः तो आवर्त भूमिमण्डल होता है।

लास्यांग (आंगिक अभिनय)

यह आंगिक अभिनय द्वादश विध निरूपित हैं– स्थितपाठ्य, आसीन, सैन्धव, पुष्पमण्डिका, प्रच्छेदक, शेष पद, द्विमूढ़, त्रिमूढ़ वैभाविक, चितपद उक्त प्रत्युक्त तथा उत्तमोत्तम।

स्थित पाठ्य

कामपीडिता, वियोगकुल युवती खड़ी हो प्राकृतभाषा निबद्ध छन्द का पाठ करे–

जैसें–

मयणप्पहुकोवताविनाए मह सीदाइं कुरंगलोश्रणाए।
सहि वल्लहसंगवंचिदाए सरणं पुम्मदलांइ जीवियस्स।।

जैसेः हे सखी! कामदेव के क्रोध से जलायी हुई, (अतएव) डरी हुई और प्रियतम के सहवास से वंचित की हुई मुझ मृगनयनी के प्राणो के रक्षक कमलदल ही हो सकते हैं।

त्रिमूढ़

भय, हर्ष, कोप, रुदन, कथन तथा संभेदन, यहसब करते हुए, रतियुद्ध में संलिप्त हम दोनों को विजित कर लिया, ऐसा कह काम हंस रहा है–

कुचोन्नमनचातुरी चालितकंचुकी बन्धया,
कपोल पुलकावली कलितमाऽऽयतापांगया।
विमोहनविवर्तनैर्विदित संगयासंगमे
त्वयाभिलषिते कथंसुमुखि मानमालम्बते।।

हे सुमुखि। कुचौं को उन्नत करने के चातुर्य से चोली धारण करने वाली, कपोलों पर रोमांच से युक्त लम्बी तिरछी चितवनवाली और ज्ञात सहवास वाली तुम मोहक हाव-भावों द्वारा मेरे सहवास की कामना प्रकट करके मान का सहारा क्यों ग्रहण कर रही हों

उत्तमोत्तम

विविध रसों और भावों से युक्त सुन्दर एवं अनेकशः अभिनयों–सहित कथित वाक्य उत्तमोत्तम हैं। जैसे–

सहर्षमवलोकनं विहितभीतमालिङ्गनम्
सरोषमपि भाषणं सजललोचनं रोदनम्।
इति प्रथमसंगमे चतुरचित्तचेतोहरो।
विचित्ररससङ्कु जयति कोऽपि वामभ्रुवः ।।१५१२।।

जैसे; हर्षपूर्वक देखना, भयपूर्वक आलिंगन करना बोलना और सजलनेत्रपूर्वक रोना–यह ललना के प्रथम सहवास में चतुर व्यक्ति के चित्त को हरने वाला अनेक रसों का सम्मिश्रण होता है।

प्रथम लास्यांग मार्ग स्थित लास्यांग (अभिनय) बारह एवं देशी लास्यांग सैंतीस हैं–

देशी लास्यांगों के संक्षेप में सैतीस भेद दस प्रकार है : १.चालि, २. चालिवट, ३. तूक, ४. मनस्, ५.लेढि, ६. उरोङ्कण, ७. ढिल्लाई, ८. त्रिकलि, ९. किन्तु, १०. देशीकार, ११. निजापन, १२. उल्लास, १३. थसक, १४. भाव, १५. सुकलास, १६. लय, १७. ढाल, १८. छेव, १९. अंगहार, २०. लंघित, २१. विहसी, २२. नीकी, २३. नमनिका, २४. शंका, २५. वितड, २६. गीतवाद्यता, २७. विवर्तन, २८. थरहर, २९. स्थापना, ३०. सौष्ठव, ३१. स्रुवा, ३२. मसृणता, ३३. उपार, ३४. अंगानंग, ३५. अभिनय, ३६. कोमलिका, और ३७. मुखरस।

उरोङ्कण

यदि कंधों तथा स्तनों को ताल-मात्रा के प्रमाण से क्रमशः या एक समय शीघ्रता से या विलम्ब से क्रमशः नीचे और ऊपर की ओर चलाया जाय, तो उसे उरोकंण लास्यांग कहते है। इसी को विज्ञ नर्तक त्रंग शब्द से अभिहित करते है। कोई आचार्य कहते हैं कि कुचों तथा कंधों को थोड़ा सुन्दर ढंग से तिरछा करके विलम्ब से या शीघ्रता से जो चलाया जाता है, वह उरोकंण कहलाता है। अन्य विद्वानों का कहना है कि जहाँ अभिनेता ताल-मात्रा के प्रमाण से शरीर को कुछ सुन्दरतापूर्वक शीघ्रता से कम्पित करता है, वहाँ उरोकंण लास्यांग होता है। इसी को नाट्य-सम्प्रदाय के आचार्य रचे नाम से संज्ञित करते हैं।

नमनिका

जहां अति सहज (कठिन) प्रयोगों में भी बिना प्रयास (स्वाभाविक रूप से) पात्रों के अंग नमित होते रहें, विद्वज्जन उसे, सभा-जनों के मनोरञ्जनार्थ नमनिका लास्यांग कहते हैं।

शंका

अंगों के उद्धत भावों से विलस पूर्वक चलाकरनर्तकी पुनः अंगों को आगे तथा पार्श्वों में भी क्रिया शील करके दर्शको को ठगती हुई-सी नर्तन करे, वह शंका नाम अभिनय है।

सैतीसवां है मुख रस-

पात्र जहां निज मुख से तत्तत रसों के अनुकूल अक्षरो को परिवर्तित करे वहाँ मुखरस नाम लास्यांग होता है।

ऐतावत पृष्ठों में अभिनय, उसके अवयव, अवयवों के रूप, स्वरूप, अभिज्ञान, उनके पारस्परिक युति-संयुति, प्रकृति, वृति, प्रवृत्ति, संगमन, संभवन, संनयन, समुन्नयन, स्वस्तयन, अनुगमन, अनुभवन, संदर्शन प्रदर्शन-क्रिया, रीति-प्रीति-प्रतीति का भास-आभास प्रस्तुत करने का बुद्धि-युति-संयुक्त उपक्रम प्रस्तुत है।

विश्वास है- विषय के जिज्ञासु कदाचित् किंचिल्लाभ उठा सकें। तदनुक्रम में पुस्तक अभिनय चन्द्रिकाकी विषय-वस्तु-संयोजन-परिशीलन भी।

यहाँ समाविष्ट उद्धरण श्री अशोकमल्ल विरचित नृत्याध्याय से साभारगृहीत हैं।

महाशिवरात्रि सन् २०१७

दारागंज, इलाहाबाद -२११००६
मो० : ०९३३६१६३९११
E-mail - sangamaniprayag@gmail.com

शिवशंकर त्रिपाठी
संपादक
संगमनी

ABHINAYA

As depected in Agnipurana and Vishnu Dharmottar Purana(part III)

I here wish to rewrite some important refereces and in gre dients of नाद्‌य and नष्त्य अभिनय and मुद्रा occurred in and अग्नि पुराण

शिरचेश्टा (Movements of head)

आकम्पितं कम्पितं च धुतं विधुतमेवच,
परिवाहितमाध्धूतमवधूतमथाऽऽचितम्।
निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तं चाप्यघोगतम्,
ललितंचेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः।।

— अग्नि० : — ३४१/७-८ १/२

Akampit (आकम्पित) raising the in a natural (स्वयावात्) and straight (ऋजु) way.

Use to make signs,to sermonize to question, and to solitoquitze and natural talk.

Kampit the movement as above if done constantly becomes

Use to be used in anger, threatening pondering etc.

Dhuta, slow wherling of head.

Use affliction, Astonishment, and repellent.

Vidhuta staking the head from one side to other, intoxication feverinhness over powered by cold suffering from old age.

Pariva(परिवाहित) hit moving the head in circular movements.

Use joy amagement.

Udvahit (उद्वाहित) carring the head upwards for once.

Use pride, height, to look upwards.

Avadhuta throwing down the head suddenly.

Use conversation, message and invocation.

Ancita (अञ्चित) bending the neck slightly on one side.

Use unhappiness anxiety and painfulness.

Nikuncit (निकुञ्चित) curving the neck slightly on one side.

Use unhappiness anxiety, and painfulness.

Nikuncit curving the neck and to elevate the shoulder.

Use pride, amorous and diversion

Paravrtta (परवृत्त) turning the head backwards.

Use to look back wards or sideways.

Utkshpta (उत्क्षिप्त) keeping the head upwards.

Use catching at a lofly object and heavenly object.

Adhogat casting down the head;

Use bowing, unhappiness

Parilolit to roll the head on all sides.

Use intoxication, disease, swooning

षौढौष्ठ कर्मकं पाद्यं सप्तधा चिबुक क्रिया।
कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवधा स्मृता।।

—अग्नि: अ०३४१/१२

Ancit (अञ्चित) ending the neck on one side

Use amorous pleasure.

Recit whirling the neck

Use looking round.

Mukta recit becomes mukta by circumambulation.

Use mediating

vivrtta (विवृत्त) moving the Neck

use amorous action

Catura sweet

Use placidity

Prasarit (प्रसारित) streteching the Neck

Use looking at a thing

Stabdha stiff

Use diseased condition, unchangeable nature cold.

Agnipuran mentions nine but vishnudharmo puran records only seven, as above, GRIVA karm is included in siras karm because it follows it.

Movments of mouth

Virudha turning away the face.

Use restraining saying 'no' etc

Vininvrtta (विनिवृत्त) mouth is closed.

Use malice, wrath and jealousy

Nirbhugna face downwards, some what turned upward so as to look away

Use seroiousness

Bhugna some what downcast face.

Use shame natural pose of ascetic

Vivrtta (विवृत्त)turning back the face.

Use laughing, grief and fear etc.

Rju (ऋजु)the normal position

Use natural position.

गजदन्तो बहिःस्तम्भो वर्धमानोऽपरेकराः।

उरः पञ्चविधंस्यात्तु आभुग्न नर्तकादिकम्।।

उदरंत्वनतिक्षामं खण्डं पूर्णमितित्रिधा।
अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम्।

—अग्नि पु0: ३४१/१९-२१

Movements of chest (urah)

Abhugna chest slightly bent

Use wounded with weapons, act of killing and heart disease.

Nirbhugna chest stuff and back lowered.

Use stiffness, amazement pride and rejection

Prakampit sudden throwing up the chest

Use laughter, weeping, fatigue and fear.

Udvahita (उद्वाहित) high chest,

Use breathing and yawning

Sama equal on all sides, flat or even

Use indicating well being

अग्नि पुराणsays आभुग्ननर्तकादिकम्, विष्णुधर्मोत्तर पु0 here perhaps differs.

Movements of sides (पार्श्वकर्म)

Samunnata (समुन्नत)waist sides and shoulders are raised

Use retreat

Nata waist and sides bent

Prasarit (प्रसारित) spreading out the sides in both ways.

Use joy

Vivartita circular movements of trika apart between the shoulder blades

Apasrt (अपसृत) moving away the trika

Use terror

Movements of jangha (जंघा)

Avarita (अवारित) movements of the right and left shanks in inverted order.

Use movements of the विदूषक

Nata contration of knees

Use standing, sitting and moving postures.

Ksipta (क्षिप्त) moving to and fro the shanks.

Use physical exercise and Tandava

Udvahit (उद्वाहित) to move the shank in such a way as to lift up the uru.

Use crooked or swinging movements.

Parivrtta (परिवृत्त) moving in the opposite direction

Use tandava dance etc.

Movements of the foot

Udghatit (उद्घातित) standing on the forepart of the foot and moving on the heel on the ground.

Use making some one attached and graceful movements

Sama two feet to be in natural position on the ground with even placing

Use natural gestures

Recit the foot moves on the forepart and the heal in raised.

Use nikspta, tadita, prachara, latita and udavarita (throwing away, whirling, rolling, ating , manifesting, sporting and elevating).

Ancita (अञ्चित) the fore part of the foot is raised that is the movement is on the heel, it meance the opposite of Recita.

Use several typs of Bhramarak as circular movements (circular movements)

Kuncita (कुञ्चित) middle part of the foot is contracted.

Use in atikrant and abhigaman that is crossing and going towards(अतिक्रान्त–crossing something अभिगमन– mere approach)

Movements of stomach

Ksama (क्षाम) slim

Use laughter and yawning

Nimna (निम्न) shunken

Use penance,fatigue,hunger.

Purna (पूर्ण) full

Use breathing out health

त्वनतिक्षामं खण्डं पूर्णमितित्रिधा अग्नि पुराण also recorads.

नवधातारका कर्म भ्रमणं चलनादिकम्।

षोढा च नासिका ज्ञेयानिःश्वासो नवधामता।।

–अग्नि पु0 : अध्या०३४१/११

Movements of eye balls

Valana oblique movement

Use hasya ras

Bhramana (भ्रमण) moving the eye balls round and round in the eye sides.

Use intoxication.

Calana qvivering eye balls.

Use veer rash

Sampravesana drawing the eye balls inside.

Use vibhats rash

Vivartana moving the eye balls to the end of the eye.

Use shringar rash

Patana (पातन) loosening the eye balls.

Use horrible rash

Udvarta (उद्वृत) back and movement

Use veer rash

Prakrta (प्रकृत) natural look

Use the remaining moods not mentioned above

Movements of nose (नासिका)

Nața with some what bent nostrils

Use agreeable state

Manda with lowered nostrils

Use sorrows.

Vikrsta (विकृष्ट) with contracted nostrils

Use pungent smell

Socchavasa (सोच्छ्वास) filled with breath.

Use agreeable smell.

Vikunita (विकुणित) drawing to gether the nose.

Use disgust

Svabhaviki (स्वाभाविकी) in natural pose.

Use in the remaining states

विष्णु धर्मोत्तर पुराण (भाग 3) here differs. अग्नि पुराण in (अध्याय 341 श्लोक 11 षोढाचनासिक ज्ञेया, निःश्वासोनवधामतः) mentions sixteen acts of nose but विष्णु धर्मोत्तर पुराण in अध्याय 25 records only six karmas.

भ्रूकर्म सप्तधाज्ञेयं पातनंभृकुटी मुखम्

अग्नि : अध्याय ०३४१/९

अग्नि पुराणकार ने भृकुटिकर्म की संख्या सात परिगणित की है वही संख्या विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी numbered है। Here the both puran as are ofsame view as:-

Utksep (उत्क्षेप) raising the eye brows upwards.

Use amorous movement

Patana (पातन) lowering the eyebrows

Use tenderness

Bhrukuti (भृकुटि) casting two brows upward from the roots.

Use sringar, ras

Nikuncit (निकुञ्चित) softly breaking one on two brows.

Use several erotic gestures like mottayit (मोट्टायित) etc.

Recita lifting up gracefslly one of the eye brows.

Use dancing

Swabhavika (स्वाभाविक) natural pose of the brows.

Use narmal moods.

Movements of lips (अधर)।

Vivartana (विवर्तन) curving the teeth at the end of the mouth.

Use jealousy

Kampa making the lower lips quivering

Use anger

Visarga protruding the lower lip

Use anger

Viguhana (विगूहन) taking in the end of the lower lip.

Use dragging and in form of mental dearrangement

Samadast biting the lip with the teeth.

Use veer rash and raudra rash

Samudga first rolled and then raised

Use compassion

Svabhavaj (स्वभावज) the natural movement should be used in the remaining states.

अग्निपुराण Says षोढौष्ठकर्मकं but here only Seven are in numbers, both the Puranas have different views

अग्नि पुराण षौढौष्ठकं
अभिमुख्यं नयन्नर्थान्विज्ञेयोऽभिनयोबुधैः।
चतुर्धा सम्भवः सत्ववागङ्गहरणाश्रयः।।
स्तम्भादिः सात्विको वागारम्भो वाचिकआङ्गिकः।
शरीराम्भ आहार्योबुध्दयारम्भ प्रवृत्तय प्रवृत्तयः।।

— अग्नि0 : 341 1–2

Abhinaya is of four types i.e. sattvik, angik, vachik and the fourth is called aharya the intellect based. The vishnudharmopuran too is of the same view.

Sattvik and angika, vacik abhinayas are based on their nautral bhavas and vritti, vacika accomplished through speech may be included in samanyabinaya. Aharyabhinaya is some what unique due to it's ingredients.

Aharyabhinaya

It's four kinds are mentioned as-

Pusta (पुष्ट) imitative forms made with clay. Wood, cloth, leather and iron are called pusta. The pratisirsa of gods, demons, yaksas, elephants, horse, deer and birds are made by pust technique.

Alankar consists of garlands, ornaments and garments.

Angaracana (अंगरचना) it includes the act of dressing up of the body in accordance with the caste, position of the character to be presented.

Sanjiva (सञ्जीव) entrance of animals on the stage is called sanjiva. Animal here means so called animal. Men here should wear masks of various animals thus the symbols of several gods carrying varient weapons should be represented on the stage it by masks. I may say a preparation–the act of intellectual mind.

The abhinaya itself is adeed of disguised person as the stage required, the skillful persons in art of dramaturgy and dance function it.

As says विष्णु धर्मोत्तर पुराण (भाग 3– नृत्तसूत्र)

The mythical origin of dancing in 34 is recorded. The Vishnu was fighting with the demons madhu and kaitabha, lakshmi noticed the graceful movement of her lord, she wished to know what was indicated by these movements, lord Vishnu told her that they constituted the art of dancing. This art represents the three worlds, then Vishnu disclosed it's secret to brahma, imparted it to rudra, inabling him there by to aquire the title Nritteshwar.

I have here endeavoured to present a condensation of the subject as produced in agnipuran and by priybalashah in her English thanslation of vishnudhrmottar puran (part III)

It may enable the scholars of DramaTurgy and nritya.

Bedauli, Mandah
Allahabad (U.P.)
मो0 : 9369492819

TRI.NI.SHI.
SHASTRI
त्रि.नी.शि.शास्त्री

□□

।।श्री।।

श्रीगणेशाय नमः

अभिनय चन्द्रिका

नमामि विघ्नराजंतं कल्पवृक्षतलस्थितं।
उमापुत्रं महाकायं दन्तिनं नृत्यकोविदम् ।।

ताण्डवप्रियपुत्राय ताण्डवप्रिय रूपिणे।
नमोस्तुचिन्तामणये शुद्धबुद्धि प्रदायक।।१

नीलकन्दरबासाय साधूनां हितकारिणे।
नमोनृसिंहरूपाय दिव्यरूप धरायते।।
अरूपाय सरूपाय दारुब्रह्म स्वरूपिणे।
नमोज्ञानस्वरूपाय बौद्धरूपायते नमः।।२

विद्याप्रज्ञास्त्ररूपेषु तन्मध्येनिगमो महान् ।
ज्ञानेष्वष्टादशोर्मध्ये चतुर्विद्यामनोरमा।।३

सिद्धविद्यायक्षिणीच विद्यागान्धर्व एवच।
चतुःषष्ठीकलाविद्या नरज्ञानं तदुच्यते।।४

लयस्तालस्तथामानः विविधः स्वरसाधनं।
*मृदङ्गतालभेदेन बीणा पट्टह वादनम् ।।५

शृणुचात्र प्रवक्षामि गान्धर्वज्ञानमुत्तमं।
गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयी संगीतमुच्यते।।६

* M.S.S. 2- मृदङ्गतालज्ञानञ्च गान्धर्व ज्ञानमुत्तमम्

श्रवणे गीत वाद्यं च दृश्ये नृत्य मनोरमा।
गीतवाद्यद्वयोर्मध्ये नृत्यं चाति मनोरमम् ।।७

ग्रन्थकार परिचयम्

भारद्वाजस गोत्रेण महापात्रेण धीमता।
महेश्वरेणरचिता ग्रन्थोऽभिनयचन्द्रिका।।८

तालगीत समायुक्तं नृत्यज्ञान विवर्जितं।
विनासंगीतज्ञानेन पशुवद्राजते नरः।।९

सङ्गीतं देवताऽग्रे स्यात् संगीतं नृप सन्निधौ।
गणिकाभवने चैव नृत्यं सर्वत्र शोभितम् ।।१०

नृत्यनिषेध स्थलम्

संघारामे मठे युद्धे गृहे गुरु वनाश्रमे।
दुर्गेयज्ञालये नृत्यं न विधेयं कदाचन् ।।११

नृत्यविद्यामहत् पुण्या सर्वज्ञान विभूषिता।

विद्याप्रचारकः

यत्प्रसिद्धं पुराकाले शङ्करात् शङ्करात्मजः।।१२

तत्समीपात्तु संप्राप्तंरम्भादेवाङ्गना ततः।
नृत्यज्ञानकलायुक्तो महान् वैभरतो मुनिः।।१३

गर्गाचार्य्यस्ततोज्ञात्वा विकटस्तत् समीपतः।
विकटात्नृत्यशिक्षार्थी कुमाराचार्य्यउत्तमः।।१४

रन्तिदेवनृपस्तस्मात् तलस्तुज्ञान संग्रही।
अट्टहास महान्प्राज्ञः उड्र नृत्य विशारदः।।१५

नृत्यंधर्माय शास्त्रोक्तं तालमानरसाश्रयम्।
तथा च देश भेदेन लौकिकं सुप्रतिष्ठितम् ।।१६

शृणुअत्रप्रवक्षामि उड्र गान्धर्वलक्षणं।
नृत्यभेदं, न्यासभेदं, प्रचारं, हेतु चालकम् ।।१७

क्षेत्रप्रकाशनं, भावं, बन्धभङ्गादि सप्तधा।
चारी, करण, स्थानाङ्ग, वर्ण्णनं जनमोहनम् ।।१८

लास्यंभावमयंनृत्यं नारीपक्षे सुशोभनं।
उग्रं पुरुषगात्रेण विचित्रमङ्गचालनम् ।।१९

लास्येनद्विविधोवादः[१] युग्मंयौवतमेवच।
यौवतंसिद्धशास्त्रं च युग्मंनिन्द्यं च सर्वदा।।२०

त्रिधायौवतमुख्यं स्यात् लघुनृत्यं मनोहरा।
विकटंपार्वणंनृत्यं कौतुकास्य प्रदायकम् ।।२१

ललितंकोमलाङ्गेन कुमार्य्याः अङ्गचालनं।
नानाकृति समायुक्ता बन्धः राजगणः प्रियः।।२२

एताश्चनृत्यभेदाश्च पूर्वाचार्य्यैः समर्थितः।
प्रसिद्धान्यासयुक्तेन मुद्राकरण सम्मताः।।२३

---

१. M.S.S. 2 ख्यातः

पादमुद्राभेदाः

चतुर्विधापादमुद्रा[1] लास्य नृत्ये विशेषतः।
पादक्रमेकरन्यासः षोडशः षोडशः क्रमात् ।।२४
कुम्भमुद्राधनुमुद्रा स्तम्भमुद्रा च चालने।

उत्तोलने महामुद्रा[2] बिषमे पादचालना।।२५

कुम्भमुद्रा

पादद्वयसमायुक्तं[3] बिपरीत मुखाकृतिः।
कुम्भाकारःपाददण्डे मुद्रा आद्या प्रकीर्त्तिताः।।२६

धनमुद्रा

एकपादस्थितदृढ़ोऽपरेण बक्रभावतः।
चालनमेकमेकेन धनुमुद्रा च मध्यमा।।२७

स्तम्भमुद्रा

पादद्वयंदण्डभावे सुदृढंह्यङ्गचालनं।
लास्याङ्गमृदुभावेन स्तम्भमुद्रा विशेषतः[4]।।२८

उत्तोलनं

क्षणिकाविषयमाभङ्गी उग्रनृत्ये च उत्तमां।

---

1. M.S.S. 2 - भंङ्गी
२. " - उत्तोलने सदाध्येयं (पाठान्तरं)
३. " - समाने च
४. " - चरेत् सुधीः

उत्तोलित महामुद्रा[1] न कुर्य्याद् युग्मपादकैः[2]।।२९

कथिताः पूर्वैः शास्त्रेषु नानाचरण साधनम् ।
समंविषम सूच्यग्रं घटिता तलसञ्चरा।।३०

मर्दितं घुर्ण्णनंचैव पार्श्वगंसमकुञ्चनं।
मात्रगौणे नामभेदे प्रसिद्धं च चतुर्विधं।।३१

एकैकेन च न्यासेन करकट्यादि सन्निभम् ।
सम्भवत्यावृत्तिं सर्वं भङ्गिंभावं न संशयः।।३२

सदावृत्त्या च सद्वृत्त्या मुद्राहीने न निष्फला।
प्रवक्ष्याम्यत्र भेदाश्च करन्यासःविशेषतः।।३३

पञ्चदशक्षेत्राणि

नानाविधकरन्यासः प्रतिथा[3] भावव्यञ्जना।
ख्यातंपञ्चदशक्षेत्रं करपुटार्थबोधने।।३४

सम्मुखेपृष्ठदेशे च उद्ध्वेशिरसि मध्यमे।
कपोलबद्धपुटौच स्कन्धेनाभिकटिद्वये।।३५

कोरकच्छिद्रस्थानेन उरुपार्श्वद्वये तथा।
पृष्ठभूमौदिव्यभूमौ पार्श्वभूमौतथाम्बरे।।३६

---

१. M.S.S. 2 – पदन्यासः
२. " – पादयुग्मकम्
३. " – सापेक्ष

इतिश्रेष्ठकरक्षेत्रं नृत्यज्ञानार्थीवन्दितम् ।
न्यासक्रमंदिव्यभेदं[१] गोप्यं गोप्यतरंमहत् ।।३७

चतुर्विधामुद्रा

मुद्राचतुर्विधाश्रेष्ठाः संयुताऽसंयुता तथा।
पुटिताभावयुक्तेन विषमा पद सन्निभा।।३८

एकक्षेत्र प्रभावेन[२] समक्षेत्र[३] प्रदर्शयेत् ।
संयुता न्याससंसिद्धा सङ्गीतभावपेक्षणि।।३९

पृथक् पल्ली समायुक्ता नानाकारैः प्रकाशिता।
भावव्यक्तस्वरूपयाऽसंयुताचित्त हारिणी।।४०

युक्तपल्लिद्वयक्षेत्रे नानाभाव समन्विते।
प्रसिद्धापुटितामुद्रा विषमापद स्पर्शने।।४१

न्यासक्रमंप्रवक्षामि संयुतादि यथाक्रमम् ।
हेतुःकरणयाप्रोक्ताभावना च पृथक् पृथक् ।।४२

ध्वजमुद्रा

अङ्गुष्ठदण्डरूपेण पार्श्वगं चतुराङ्गुलैः।
ध्वजसंयुतमुद्राख्यं सूचितं विजयादिभिः।।४३

---

१. M.S.S. 2 – पदन्यासः
२. ” – पादयुग्मकम्
३. ” – सापेक्ष

सर्पशिरा

अङ्गुष्ठपल्लवैर्युक्तं कनिष्ठातर्जनींविना।
मध्यमाऽनामिके वक्रे मध्येकरतलाश्रिता।।४४

एवंसर्पशिरामुद्राभयउद्वेग दायिनी।
लास्येभावमयं नित्यं नेत्रचालनपेक्षणी।।४५

बलया

बद्धसर्वांगुलौ वक्रे तर्जन्यग्रे च बृद्धकं।
बलयाकारमुद्रा सा एकाग्रं दृष्टिभावना।।४६

करतालगतावक्रे अंगुष्टेद्वितीयावली।
तर्जनीयुक्तग्रन्थ्यग्रे उर्द्ध्वगा अंगुलित्रयी।।४७

ध्यान

ध्यानं ध्यानरता मुद्रा[१] लास्याऽग्रेविषमेतथा।
अभया
विपरीत मुखाकारे अभया सा प्रकीर्त्तिताः।।४८

बोधिका

दण्डाकारेतर्जन्योग्रं सम्मुखे मध्यमादयः।
करपृष्ठमुखी वृद्धा प्रबोधनार्थबोधिका।।४९

अङ्कुशा

तर्जनीकिञ्चिदुर्द्धवस्तु क्षुद्रा[२] क्षुद्रतरंतथा।
मध्यमानामिका किञ्चित् निम्नगाधरणींप्रति।।५०

---

१. M.S.S. 2 - ख्यातं
२. " - वक्त (पाठांतरं)

स्थिरांगुष्ठाङ्कुशामुद्रा कर्षिणी तालनर्त्तने।
करायत्तं मुखायत्तं सर्वायत्तं स्वभाविका।।५१

भया

सकुञ्चिते यथास्थाने समस्तांगुलि निम्नगा।
एवंऽभयाशुभामुद्रा वरादि दान व्यञ्जिका।।५२

बामांगुष्ठ समायुक्तेः चतुर्थ्याकरपल्लवे।
पञ्चम्यासह युक्तेन उर्द्ध्वं दण्डसमंद्वयम् ।।५३

दण्ड

दण्डमुद्रा महामुद्रा दण्डदीक्षाप्रदर्शने।
अङ्कुशाभगिनीदक्षे सर्वदा सहचारिणी।।५४

लुलिता

भुजदण्ड दृढ़ानिम्रा तिर्यक् पल्लिद्वयेतथा।
लुलिता नृत्य प्रागभागे पार्श्वे क्षेत्रे[1]प्रदर्शयेत् ।।५५

निषेधा

भयामुद्रा समान्यस्ता करचालन तत्परा।

निषेधा

भयामुद्रा समान्यस्ता करचालनं तत्परा।
निषेधाज्ञापिकामुद्रा संगीतभावबोधिका।।५६

धिक्कार

कुञ्चितास्फारिताशीघ्रा निर्मिता क्षणिका सदा।
वलयासमुद्रासाधिक्कारा न्यासमध्यमा।।५७

---

१. M.S.S. 2 पार्श्वक्षेत्र

विरोधा निर्देशिका

ताम्बुला

बिरोधामुष्टिभेदाश्च तर्जन्योर्द्धवे निवेशिका।[1]
ताम्बुलातर्जनीवृद्धायुक्ते अति सुशोभना।।५८

करतलगता तिर्यक्[2] मध्यमा विपरीतगा।

वस्त्रा

एवंवस्त्रकरन्यासः देवनृत्ये मनोरमा।।५९

षोडशः संयुतामुद्रा पल्लिमेकां समाश्रिता।
लास्यंतालमयंनृत्ये प्रसिद्धा आद्यभावना।।६०

शृणुतांऽसंयुताभेदाः पल्लिक्षेत्र पृथक् पृथक्।
सहताल समावेशं गौणभाव प्रकाशिनी।।६१

अष्टाविंशति भेदानांऽसंयुताचित्तहारिणी।
करक्षेत्रंविनाहीना पल्लिक्षेत्रक्रमंशृणु।।६२

समविषम संवेगा नानाक्षेत्र समाश्रया।
कथिता करक्षेत्रा सा तद्ज्ञानहीननिष्फला।।६३

समाकारेयथा मुद्रा प्रभेदे मृदुचालना।

समक्षेत्र

समभङ्गीमयंक्षेत्रं समानाम स उच्यते।।६४

---

१. M.S.S. 2 – निदशिका
२. " – किंचित

भिन्नाभिन्नपृथक्क्षेत्रं पृथक्न्यास समाहितं।
क्वचिद्धीराअधीरापि क्वचिद्वेगपरायणा।।६५

क्वचित् बामकरं उर्द्ध्वंक्वचिद्दक्षकरंभूमौ।*
क्वचित्तक्षकरः पश्चात् वाम सम्मुखक्षेत्रजा।।६६

एतेषांविषमाभङ्गी नृत्यारम्भे तथान्तरे।
उग्रनृत्ये प्रसिद्धा सा युग्मनृत्ये विशेषतः।।६७

सहभावप्रकाशेन क्षणिवं: परिवर्त्तनं।
शृङ्खलारहितः न्यासः वेगनाम्ना स उच्यते।।६८

क्रमेणैवं प्रवक्षामि मुद्रा असंयुतादयः।
मुख्यक्षेत्रं करक्षेत्रं मित्र मुद्रा तथैवच।।६९

हंसपक्ष

हंसपक्ष समन्यासः[१] कटिपार्श्वद्वयेऽभये।
पक्ष्याकारकृतापल्ली उर्द्ध्वावृद्धाच पञ्चमा।।७०

अपरात्र्यङ्गुली निम्ना कुटिला पल्लवं प्रति।
नृत्यादौरचितामुद्रा पादकुम्भाकृतिध्रुवं।।७१

गोमुख

मध्यमाऽनामिके युग्रं अगमुंष्ठाग्रे सुकुञ्चिते।
शृङ्गाकारेउर्द्ध्व देशे कनिष्ठातर्जनींप्रति।।७२

---

* भूमौदक्षकर क्वचित्

१. M.S.S. 2 – न्यासेत्

धेनोर्मुखाकृतिर्मुद्रा सम्मुखे दक्षिणेभुजं।
तत्वामपार्श्वभागेन भृङ्गवत् समदर्शयन् ।।७३

कुम्भमुद्राःस्थिता पादाः नृत्याद्ये वक्रदर्शनं।
पार्श्वभूमौवद्धदृष्टि उग्रेण सुसमाहिता।।७४

चतुर

करनिम्नसमायुक्ता अङ्गुष्ठाकुटिलीकृता[१]।
सम्यक्तीर्यक् द्वितीया च समभावेऽङ्गुलित्रयं।।७५

वामहस्तकटिक्षेत्रे दक्षिणः स्कन्ध पृष्ठतः।
वेगातालक्रमायुक्ता विपरीताकृतोत्तमा।।७६

चतुरन्यासभेदाश्च ताण्डवेप्रियदर्शनं।
उर्द्धवकरस्वभावेन पादस्योत्तोलनं क्रिया।।७७

शरपेक्ष

सम्मुखेमुष्टियुक्तेन दीर्घेवामकरे सुखं।
दक्षकर्ण्णमूलेन्यस्तः करमुष्ट्या मृणालवत् ।।७८

शरक्षेपाकर मुद्रां पदमुद्राच सायके।
दृष्टिर्वामकरे न्यस्ता गीतभावार्थ दायिनी।।७९

अर्द्धचन्द्र

बिष्फारिततथाङ्गुष्ठावृद्धः तर्जनीह्यर्द्ध चन्द्रवत् ।
सर्वाङ्गुल्या समावेशे नाभौद्ध्वे च प्रदर्शयन् ।।८०

---

१. M.S.S. 2 – कुटिलाकृति

क्षिप्ताङ्कुशातथा दण्डा शिरः पार्श्वे व्यवस्थिते।
मित्रमुद्रा इति ख्याता उग्रनृत्ये मनोरमा।।८१

नृत्याग्रेविषमांघ्रिश्च वेगवान् ताल भञ्जने
एवं ताण्डवमुद्राख्य, दृष्टिः स्वगुल्फदर्शने।।८२

निकुञ्चक
करौच कटितुल्यं स्यात् चरणौकलशोपमौ
पादकरकटिपल्लिः सहतालेरसक्रमात्[1]।।८३

एषानिकुञ्चकमुद्रा संघनृत्ये सुशोभना
दृष्टिर्निबद्धा नाभौ वा सम्मुखे च पुनःपुनः।।८४

चतुर्मुख
अङ्गुष्ठस्याग्रभागेन तर्जन्यग्रस्यस्पर्शनं
तर्जनीप्रथमापर्वे मध्यमाग्रसमाश्रितः।।८५

मध्यमाद्वितीयापर्वेऽनामिकाग्रेषुयोजयेत्
नाभिकातृतीयापर्वे वेदमुख्य विधानतः।।८६

क्षेत्रवक्षोभये पार्श्वे नृत्यप्रान्तेविधानतः
घटे वा स्तम्भन्यासेन पाददृष्टिः पदद्वये।।८७

मृगाक्षा
अङ्गुष्ठतर्जनीयुक्तं सम्मुखे[2] अङ्गुलित्रयं
समान्तरालभावेन वक्षमध्येप्रदर्शयेत् ।।८८

---

१. M.S.S. 2 - सहतालेन चालयेत्
२. M.S.S. 2 - स्वभावे

अंगाभिनय की विविध मुद्राएं

उद्वृत्त

तलसंघट्टित

लोलित

शकटास्य

वृषभक्रीडित

एलकाक्रीडित

विष्कम्भ

उपसृत

विष्णुक्रान्त

अपक्रान्त

उरुद्वृत्त

अड्डित

संभ्रान्त

मदस्खलितक

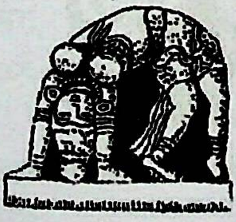

अर्गल

रेचकनिकुट्टक

नागापसर्पित

गंगावतरण

प्रसर्पित

पार्श्वक्रान्त

निवेश

नितम्ब

हरिणप्लुत

सिंहविक्रीडित

सिंहाकर्षित

जनित

अवहित्थ

दण्डपांद

संनत

सर्पित

मयूरललित

सूचीविद्ध

प्रेङ्खोलित

स्खलित

परिवृत्त

करिहस्त

पार्श्वनिकुट्टक

तलसंस्फोटित

गण्डसुचि

सूचि

अर्धसूचि

गजक्रीडितक

पार्श्वजानु

गरुडप्लुत

गृध्रावलीनक

विवृत्त

विनिवृत्त

ललाटतिलक

विवर्तित

अतिक्रान्त

विद्युद्भ्रान्तक्रिय

निशुम्भित

उरोमण्डल

विक्षिप्त

वृश्चिकरेचित

वृश्चिककुट्टित

लतावृश्चिक

वैशाखरेचित

चक्रमण्डल

आवर्त

कुञ्चित

दोलापाद

तलविलासित

व्यंसित

चतुर

क्रान्त

भुजंगत्रस्तरेचित

भुजंगाञ्चित

आक्षिप्त

उद्घट्टित

दण्डरेचित

वृश्चिक

मृगाक्षानृत्यसापेक्षा,चरणौ सायकाकृति
दृष्टिःविष्फारितानेत्राः सम्मुखावद्धभावतः।।८९

शुकचञ्चु
शुकचञ्चाकृतिर्मुद्रा चिवुकेवक्रतर्जनी
मध्यमाङ्गुष्ठयुक्तेन दक्षिणेकर्णसन्निधे[१]।।९०

धन्वाकारेपदन्यासः दक्षिणपाद वक्रतः
वक्रपादगतादृष्टिः प्रसिद्धाभङ्गीमुत्तमा।।९१

आरत्रिका
अस्त्रपल्लिसमन्यासः दक्षिणकरपल्लवं
घण्टामुष्टिरिंवबामं सन्निधौ वामजानुनी।।९२

दक्षिणकरसम्मुखे दृष्टिर्वद्धा तथैव च
उत्तोलित पदन्यासः अर्च्चानृत्य शुभं तथा।।९३

क्षिप्ता
पृथगङ्गुलिसर्वाणि अंगुष्ठेविपरितगे
कनिष्ठासमभावेन स्व बपुर्दिगमाश्रया।।९४

विक्षिप्ताग्रागुंलित्रीणि क्षिप्ता मुद्राच ताण्डवे
समभावेपृथक्रूपे कटिर्दक्षे शिरोर्द्धवगे।।९५

विषमोत्तोलिता पादः दृष्टिर्विकटसम्मुखे
निर्देशिकाङ्कुशामुद्रा सर्वदा सहचारिणी।।९६

---

१. M.S.S. 2 दर्शयेत्

कुञ्जरवक्त्रा

विषमागजवक्त्रा सा चतुरांगुल बक्रतः।
अंगुष्ठकुञ्चितानिम्ने दक्षिणेशिरउर्द्धवगा।।९७

वामेविम्बोष्ठन्यासेन वामपार्श्वे तदाकृतिः
वीरासनेस्थिताः पादाः दृष्टिरावद्ध शीर्षयोः।।९८

श्रुतिकूला

कर्ण्णमाच्छाद्यवस्त्रेण दक्षिणंकटि सन्निधे
अथवाध्यानन्यासेन कर्ण्णपार्श्वेसुशोभना।।९९

केनचित्शब्दमाकर्ण्य चकिताभविता यथा
तथादृष्टिलयंभावमाचरेत् नट पुंगवः।।१००

उत्तोलिता

दण्डपादेस्थिता दृढ़ा तालेन मृदुचालनं
पार्श्वकरद्वयो न्यस्ता अभयाकर पल्लिवत्।।१०१

जलोत्तोलित न्यायेन पार्श्वमारभ्य स्कन्दतः
क्षणाचरित मुद्रा सा पार्श्वदृष्टिः क्षणे क्षणे।।१०२

शिवकरा

प्रथमाद्वितीया क्षुद्रा स्वभावेहृद मण्डले
मध्यमानामिका उर्द्धवे अपरंकरमाश्रया।।१०३

परस्पर यथास्थाने स्पर्शनं समभावतः।
दृष्टिमुद्रागृहेवद्धा कुम्भपादे शिवंयथा।।१०४

आसनं

आसनंगौणमुद्रा सा केवलाभिनयोत्तमा
संगीतवचनाभावा:[१] प्रकाशार्थं च गायने।।१०५

कटिसम्मुखभागेन कराणां संप्रसारणं[२]
एवंआसनमुद्राख्यं ख्यातादेवार्च्चनेशुभा।।१०६

निवेदना

वद्धाञ्जलिसमंन्यासा संगीत भाव गामिनी
कटिभागेकृतामुद्रा नयनं संमुखं प्रति।।१०७

एताः समर्पणंमुद्रा नृत्यप्रान्तेच संगीते
कथिता सा महामुद्रा पूजनार्थे विशेषतः।।१०८

पादवलया

एकपादस्थितादृढ़ा अपरा जानुस्पर्शने
तद्पार्श्वकरतर्जन्यावक्रे वलयकर्षिणी।।१०९

अभिमानासमामुद्रा अपरंचिबुं प्रति
मुग्धादृष्टिऽधरे न्यस्तामुग्धमूर्त्तिर्नसंशयः।।११०

विभङ्गा

स्वभावेनकरौन्यस्तौ हृदयसमीपे दृढ़ं
पादतल कुटिलेन कर्ण्णभागे उपस्थितौ।।१११

---

१. M.S.S. 2 – रचना
२. M.S.S. 2 – संप्रसारयेत्

दृष्टिःसंमुखमावद्धा विभंगा बन्धउत्तमा
कुमारीनृत्य संख्याता न कुर्य्यात् षोड़शोत्तरे।।११२

षोटला

प्रतिकराङ्गुलौन्यासेत् उपर्य्युपरिचन्द्रवत्
वाहुद्वयसंमुखे च दण्डाः वक्षोग्र सन्निधौ।।११३

पोटलाकृतिमुद्रा सा श्रेष्ठतालप्रदर्शने।
लययुक्ते महामुद्रा न्यासः[१] नृत्ये विचक्षणः।।११४

विराज

दक्षिणकरचक्रेण पुरोभागे मृणालवत् ।
बामकरागुंलौ पृष्ठे स्कन्ध देशेतिशोभने।।११५

अर्द्धचन्द्रसमंन्यस्ता न्यंगुल्यानि सुखेन च।
एवं मुद्रा सामाख्याता बिराज[२] न्यासमुत्तमम् ।।११६

गोपना

सायकापदमाक्रम्य कटिवक्रोत्तरे दृढ़े।
सर्पशिराकृतिस्कन्धे निबद्धंदक्षीणंकरं।।११७

वाममध्यमा युक्तेन करग्रन्थ्यग्रशोभने।
दृष्टीर्भूमौच मुग्धेन नारीनृत्ये विशेषतः[३]।।११८

---

१. M.S.S. 2 – लास्य
२. M.S.S. 2 – विराल
३. M.S.S. 2 – गोपनाख्यविशेषतः

मदला

कलशाकारपादानां कुटिलंवामपल्लवं।
अङ्गुल्यसमभागेन वामपार्श्वे विशेषतः।।११९

दक्षिणकरतद्भावे दक्षिणकटिपार्श्वयोः।
दृष्टिर्दक्षकरौ बद्धा मर्दलान्यासमुत्तमा।।१२०

नन्दावर्त्ता

वामपादस्थितादृढ़ादक्षो पद्मासनो पमा।
उभयकरसंयोगाकर्षणंआसनंप्रति।।१२१

वामहस्तोपदप्रान्त दक्षिणजानुस्पर्शने।
एवंछन्दाकृतिमुद्रानन्दावर्त्ता न संशयः।।१२२

तरङ्गा

कुम्भमुद्रा समंवामदक्षिणौलम्बरज्जुवत् ।
दक्षकरस्तथालम्बा दक्षिणंचरणंप्रति।।१२३

वामउर्द्धवगतीरम्ये अर्द्धचन्द्राकृतिंकरः।
दृष्टिर्दक्षिणपादेन तरङ्गासौम्य दर्शनम् ।।१२४

कुञ्चना

छन्दाकारेकराङ्गुल्यौ करनिम्नप्रदर्शनं।
शिरोदेशेछत्रभावे दर्शनंसमकुञ्चनं[१]।।१२५

अभिमाना

वामतर्जनीओष्ठाधः स्पर्शने अभिमानिका।
दक्षकरशिराभागे कुटिले दानपल्लिवत् ।।१२६

---

१. M.S.S. 2 - दर्शयेत्समकुञ्चने

अभिमाना सा प्रसिद्धा रास रासेश्वरीप्रिया।
ललितानामिकामुद्रा गान्धर्वन्यासमुत्तमम् ।।१२७

एताश्चन्यासभेदाश्च उड्र गान्धर्वलक्षमं।
असंयुतादि मुद्राणि आचरेत् सावधानतः।।१२८

विपरीताकृतामुद्रा करणं विकलं भवेत् ।
विकृतकरणं नृत्ये निन्दनीयं पदे पदे।।१२९

भेदान्तरं शृणुअत्र पुटिता न्यासमुत्तमा।
नृत्यशास्त्रेप्रसिद्धा सा नट्यानन्द प्रदायिका।।१३०

पुटिताद्विविधाप्रोक्ता उड्र गान्धर्वलक्षणे।
पुटितावन्धपुटिता नृपाग्रेच विलक्षणं।।१३१

पुटिता

उभयकरयुक्तेन उत्कटंमुखव्यञ्जका।
विकटंनृत्यभावेन पुटिता उग्रदर्शना।।१३२

वन्धपुटिता

एककर समायुक्तंकरे पादादियोजना।
वन्धपुटिता नाम्ना सा कुटिला अङ्गचालनम् ।।१३३

मुखव्यञ्जना

अथप्रसङ्गभेदेन चतुर्धा मुखव्यञ्जना।
वन्धलास्यं तथाउग्रं मृदुओष्ठ प्रदर्शनम् ।।१३४

विरहदुःखभावेन स्मितोष्ठलास्य व्यञ्जना।
भावभेदे ओष्ठरुद्धे नानाभावं प्रदर्शयेत् ।।१३५

इषत् हास्यं[1] इषद्लास्यं इषदामृदुभाषिताम् ।
उग्रंविकट व्यादानंत्रिधामुग्राङ्गव्यञ्जना।।१३६

एतेषांव्यञ्जना दिव्यं पुटिता सहचारिणी।
श्रृणुभेदत्रयंमुख्यं पुंसोनृत्ये प्रयोजनम् ।।१३७

उग्र
केवलंदशनं दृश्यं स्फारिते नयनंतथा।
व्यादान
कथितंउग्रमेतेषां मुखव्यादाने व्यादनम् ।।१३८

विकट
जिह्वाललनयुक्तेन ख्याताविकट व्यञ्जना।
पुटितान्यासभेदेन उग्रनृत्येप्रशंसिता।।१३९

पुटिताद्वादशाभेदा वद्धा कर्कटिकार्च्चना।
आवाहनामेषयुद्धा गम्बुजाकुम्भका तथा।।१४०

भेकासना महाशङ्खा प्रख्याता मग्रा एव च।
करकच्छपिकामुद्राप्रणतादि यथाक्रम् ।।१४१

वद्धा
वीरासना अधिरूढ़ा वद्धोष्ठे नेत्रमुद्रिते।
सर्वाङ्गुलिसमाबद्धं तलंकरतलाश्रया।।१४२

---

१. M.S.S. 2 – इषत्हास्यसदालास्ये कदवा मृदु भाषणम्

एबंवद्धामहामुद्राः स्थिरभाव विचारता।
पुरुषस्याङ्गसापेक्षे[1] दुरूहंभावसाधनम् ।।१४३

ककटिका

तिर्यक्वीरासना रूढा उभयदन्तदर्शने।
हृदयमण्डले न्यासेत् न्यासकर्कटिका महत्।।१४४

अङ्गुष्ठद्वयसम्बन्धा[2] कर्कटपादन्यासवत् ।
पादःकुम्भसमं न्यासेत् उग्रभाव समन्वितः।।१४५

अर्च्चना

कनिष्ठाग्रे कनिष्ठाग्रंचतुर्थ्यग्रेचतुर्थकं।
मध्यमया सहयुक्ता अर्च्चना कमलंयथा।।१४६

यथा आवाहनंमुद्रा वीरासनसमाश्रिता।
अर्च्चनञ्च पृथक् न्यासेत् केवलं कुक्कुटासने।।१४७

मेषयुद्धा

द्वयंपादतलंयुक्तंआसनेसमवेशनं।
हृददेशेसमावेशेमुष्टिपृष्ठेतथैव च।।१४८

स्फारितनयनाःयत्रउभयदन्तगह्वरं।
मेषयुद्धाइतिउग्रं नृत्यंतत्रमनोहरम् ।।१४९

---

१. M.S.S. 2 – पुरुषस्याङ्गे कर्त्तव्यं दुरूहभाव दर्शयेत्
२. M.S.S. 2 – युक्तेन
३. M.S.S. 2 – दन्तोभय प्रदर्शने

अर्धरेचित

ऊर्ध्वजानु

कटिभ्रान्त

छिन्न

पावापविद्धक

भ्रमर

दण्डपक्ष

नूपुर

ललित

निकुट्टक

अर्धनिकुट्टक

विक्षिप्ताक्षिप्तक

अपविद्ध

समनख

स्वस्तिकरेचित

मत्तल्लि

अर्धमत्तल्लि

वलित

तलपुष्पपुट

वक्षःस्वस्तिक

वर्तित

मण्डलस्वस्तिक

लीन

उन्मत्त

वलितोरु

स्वस्तिक

अर्धस्वस्तिक

दिक्स्वस्तिक

पृष्ठस्वस्तिक

आक्षिप्तरेचित

अलात

भुजंगत्रासित

कटीभ्रम

कटिछिन्न

घूर्णित

निकुञ्चित

गम्बुजा

ध्यानासीना समाध्यानं शिरोर्द्ध्वे पुटिताःकराः।
करमध्ये शिरोदेशं संमुखेयोजयेत्नटः।।१५०

एषागम्बुजमुद्राख्या केवलं शिर दर्शनं।
मुखमण्डलदृश्येन जायते न्यास विकृतम् ।।१५१

कुम्भका

कुम्भपादसमायुक्ता कुम्भवत् शिरसि करौ।
छन्दवत् अङ्गुलिः सर्वाःकुम्भकान्यास उच्यते[१]।।१५२

भेकासना

विषमपादयुक्तेन आसनं भेकपादवत् ।
करद्वयं मध्यभागे उरजौयत्र[२] निम्नगे।।१५३

संस्थाप्य पादभागेन विपरीत दिशिक्रमात् ।
एषा भेकासना मुद्राउग्रनृत्ये विशेषतः।।१५४

नृत्यान्ते चालिता मुद्रा स्फारिता नयन द्वयं।
उग्रं दशन युक्ता सा दृष्टिः संमुखमाचरेत् ।।१५५

महाशङ्खा

वद्धदक्षकरश्रेष्ठं आवर्तौ वामदक्षिणौ[३]।
दक्षाङ्गुष्ठे समबद्धा वामाङ्ग मध्यमाङ्गुलम् ।।१५६

---

१. M.S.S. 2 – मध्यमा
२. M.S.S. 2 – उरजनिन्मगा
३. M.S.S. 2 – मुष्ठपाश्वगे

युग्माङ्गुलिमुखं युक्तंचिबुकंदृढ़ बन्धने।
कुटिलपादन्यासेन शङ्खामुद्रा भविष्यति।।१५७

प्रख्याता

उग्रनेत्रमुखंपादावीरछन्दे विनिर्मिताः।
स्वभाव बद्ध न्यायेन कट्यां करनिबेशयेत् ।।१५८

मित्रशिवकरामुद्रा अथवा ध्यान पल्लिवत् ।
दृष्टिमुद्राङ्कितक्षेत्रे प्रख्याता सा विधीयते।।१५९

मग्ना

वीरासना समारूढ़ा दक्षिणंवक्रभावतः।
दक्षिणकरपृष्ठांशे वर्द्धयन्दण्डखण्डवत् ।।१६०

वामसंमुखतः[१] युग्मंनयनंसंमुखंप्रति।
एवंमग्नामहामुद्रा उग्रनृत्येप्रशंसिता।।१६१

करकच्छपिका

पादकच्छपिकन्यायं पादयुग्माग्रे[२] स्थापितं।
वक्षोभूमिसमायुक्तंमुखंसंमुखमाचरेत् ।।१६२

करकच्छपिकामुद्रा युग्मनृत्ये मनोरमं।
एवंन्यासो न कुर्य्याद्वै भद्रनृत्ये नृपालये।।१६३

---

१. M.S.S. 2 – तत् रम्यं
२. M.S.S. 2 – वेशितं

प्रणता

प्रणताशेषमुद्रा[1] सा नृत्यन्ते अभिवादने।
पाददण्डसमायुक्तं प्रणता प्रणिपात वत् ।।१६४

एबंपुटितभेदानां लास्योग्रे न्यासमुत्तमा।
अन्तेश्रृणुप्रवक्षामि दशभेदा[2] विशेषतः।।१६५

वन्धनृत्यमहाघोरं नटी कष्ट प्रदायिनी।
किशोरअङ्गसापेक्षा विषमं यौवनान्तरे।।१६६

गगनाद्विमुखाश्चैव तोरणाशयनातथा।
क्षुद्राशूलावृताङ्गाश्च डमरुमिथुनोदया।।१६७

प्रदीपादीपभेदश्च[3] नानाक्षेत्र समाश्रया।
श्रृणुत्वं दशभेदाश्च बन्धः राजगण प्रियः।।१६८

पादंविषमसंस्थान करौ कुटिलताश्रयौ।
पादकर समायुक्तं नृत्यं कष्ट प्रदायकं।।१६९

गगना

वामकरःभूमौयुक्तः वक्षोरु समभावतः।
दक्षपादसमायुक्तं पृष्ठे इस्ताग्रे छन्दवत् ।।१७०

---

१. M.S.S. 2 – आचरेत प्रणता मुद्रा
२. M.S.S. 2 – विषमादशभेदकम्
३. M.S.S. 2 – संयुक्त

मुखसंमुखमाप्नोति लास्यभावे[1] समन्ततः।
एवंगगन बन्धो सा सर्वानन्द प्रदायका।।१७१

द्विमुखा

वामदक्षिणपादयो स्फारिता वामदक्षिणे।
करप्रदीपयुक्ता सा दिव्यानन्द प्रदायिनी।।१७२

तोरणा

पादद्वयसमंभावे पृष्ठेकर समंतथा।
एवंतोरणन्यासा सा मुखक्षेत्र मनोरमा।।१७३

शयना

तोरणंसममुद्रा सा पादैकसंमुखंप्रति।
करेणपृष्ठदेशे च शयना शून्यलोचना।।१७४

क्षुद्रा

पद्मासन समंपादं छन्दवत् कर युगयोः।
पृष्ठेकरयुगंन्यस्तं क्षुद्रा बन्ध मनोहरा।।१७५

त्रिशुला

भूमौपरिकटिंस्थाप्यं पादं गगनमाश्रितं।
जानुमध्येसमं पृष्ठं मस्तकं समदर्शयन् ।।१७६

करंजानुसमाबद्धं बन्धकष्टप्रदंध्रुवं।
विनागुरूपदेशेन न कुर्य्यात् त्रिशूलादयः।।१७७

---

१. M.S.S. 2 – सदेशे भाव प्रदर्शयेत्

वृताङ्ग

कटिभूमिंसमास्पृश्य हस्तंशिखेर्द्ध्वे न्यासितं।
पृष्ठेकुटिलभावेन पादंहस्तेनयोजयेत् ।।१७८

एवंवृतौगमुद्राख्या शरीर श्रमदायिनी।
मुखाग्रे प्रदीपंदिव्यं कुचाग्र धरणीं प्रति।।१७९

डमरु

पार्श्वोभयेसमावेशंचरणं गगनं प्राति।
पाददण्डे समाबद्धा मुद्राप्रणत पल्लिवत् ।।१८०

डमरुख्यातमुद्रा सा बन्धान्ते अभिनन्दनं।
एवं प्रबन्धता मुद्रा प्रदीपाशुभदायिनी।।१८१

पादद्वये प्रदीपञ्च करमध्येच मस्तके।
मुखयुक्ते तथा पञ्च प्रदीपाशुभदासदा।।१८२

मिथुनाश्रया

युग्मनृत्ये कृते बन्धे दिव्यमिथुनमाश्रया।
उभयंतोरणंमुद्रा संलग्रे माचरेत्यदि।।१८३

एताश्चदशभेदाश्च बन्ध क्लेशप्रदायिनी।
गुरुइष्टंविना त्यक्तं वर्जितंसाधनं विना।।१८४

नानाभङ्गी इतिख्यातंमुद्राभेदा विशेषतः।
ग्रन्थेनृत्यगतेकृत्यं उड्रगान्धर्वलक्षणं।।१८५

सपादान

गीतानुपेक्षितं वाद्यं वाद्यानुपेक्षितंलयः।
लयानुपेक्षितस्तालो नृत्य सर्वसमन्विताः।।१८६

बद्धाबद्धद्वयं भेदं नृत्यज्ञाने विशेषतः।
बद्धनृत्येसदाध्यायेत् गतिर्नियमचारणः।।१८७

अबद्धेनियमोनास्ति नास्त्येव करणादयः।
मस्तकनयनदृष्टिः सवाङ्गचालनंतथा।।१८८

बद्धनृत्यंसमाख्यातं काव्यवस्तुप्रदर्शने।
काव्यविषयभावेन मुद्राख्याता भविष्यति।।१८९

काव्य वाक्यादिबद्धेन मुद्रा दृष्टिश्च चालनं।
प्रदर्शनंइतिमुख्या उड्रदेशेऽतिशोभनं।।१९०

भिन्नाभिन्न क्रमभेदाः पूर्वशास्त्र समर्थिता।
तथापिदेशभेदेन नृत्ये पार्थक्य जायते।।१९१

देशभेदेनृत्यप्रशंसा

मागधीशौरसेनीच कर्ण्णाटकेरलादयः।
गौड़पञ्चनदश्चैव उड्र नृत्यादि सप्तधा।।१९२

मागधंभावमुख्यंच शूरसेन्यङ्गचालने।
कर्ण्णाटंसर्वरूपेण केरलन्यासमुत्तमं।।१९३

युग्मनृत्यरताः गौड़ पञ्चनद्याङ्ग नर्त्तने।
भावप्रदर्शनेउड्रंख्यातंअत्र न संशयः।।१९४

गोप्यगोप्यतमा पुण्या नृत्यविद्यार्थ दायिनी।
धर्मार्थकाममोक्षादि सर्वसिद्धिप्रदंशुभं।।१९५

श्रद्धावान् लभते विद्या बुद्धिहीनेन निष्फलं।
बुद्धिमानपेक्षतेनित्यं गुरूपदेशतः सदा।।१९६

विनागुरूपदेशेन न सिद्धिः न च साधनं।
निष्फलंभवतिसर्वं इष्टमन्त्रजपं विना।।१९७

मुनिंनारदमाराध्य हृदिहरीहरादयः।
सरस्वत्यार्च्चनं नित्यं कर्त्तव्यं महतांसदा।।१९८

सरस्वती तु सायाह्ने सन्ध्यायां विष्णुरूपिणी।
नीलेन्दीवर श्यामानीलकुञ्चित मूर्द्धजा।।१९९

नित्याराध्य देवता
निर्ण्णयम्

चतुर्भुजाचैकववक्त्रा पद्मपत्रायतेक्षणा।
शङ्खचक्रगदापद्मं धृत्वा या जयदाशुभा।।२००
पीताम्बरदधात् च ध्यायेत् विष्णुस्वरूपिर्ण्णी।

पद्म
नीलपीठे स्थितारम्ये सामवेद स्वरूपिर्ण्णी।।२०१

वरदा गरुडारूढ़ां सर्वसिद्धि प्रदायिर्न्नी।
एवंध्यात्वामहाशक्तिं नृत्याग्रे नटीसर्वदा।।२०२

पुनश्च ध्यानरूपेण ताण्डवं सप्तचिन्तयेत् ।
शृणुगोप्यतमंरूपं सप्त ताण्डव लक्षणाः।।२०३

---

१. M.S.S. 2 – पद्म

आनन्दताण्डवं सन्ध्याताण्डवं मातृताण्डवं।
गौरीकाली त्रिपुरा च संहारताण्डवं तथा।।२०४

आदौरङ्गालये ध्यात्वा जय स्वरूप सिद्धिदं।
पुनश्च भावनांकुर्य्यात् नट माहेश्वरं विभुं।।२०५

पुषणंजयनामानं वरदाक्षस्तुसन्ततेः।
शङ्खचक्राङ्कितंहस्तं नमामिजयदेवता।।२०६

नृत्यशास्त्रमिदं रम्यं मृगचंद्र जटाधरं।
अक्षसूत्रं त्रिशूलं च विभ्राणं च त्रिलोचनं।।२०७

इतिविचिन्त्यभावेन कृत्वाभिनन्दनंपुनः।
कुर्य्यात् नृत्यसमारम्भ तालमानरसाश्रयं।।२०८

तालश्रेष्ठसदानृत्ये शिवकृत्य् न् संशयः।
गीतवाद्यं च नृत्यं च सर्वे ताल समाश्रया।।२०९

संक्षेपेऽत्रप्रवक्षामितालज्ञान समुचितं।
सङ्गीतविषयाभेदे ताल विषदवर्ण्णना।।२१०

तालपरिचय

स्वरशास्त्रोक्ततालानि सप्तशतविधानिच।
प्रभवन्ति सदा नृत्ये गान्धर्वमत सेवितं।।२११

तालद्विविध सा प्रोक्ता मार्गलौकिकएवच।
दीर्घताल लघुताल विषमताल साधनं।।२१२

तालदीर्घह्रस्वयुक्तं छेदभेद विशेषतः।
मात्रायुक्तं समाबद्ध स च हि तालकेवलं।।२१३

प्रवक्षाम्यत्रभेदानि यत्किञ्चत् तालभेदयोः।
विषमाविपुलाठेका आडठेका तथैव च।। २१४

कल्याणगजकङ्कालि जयतालत्रिभङ्गकं।
द्वन्द्वप्रतापहंसाख्या मुकुन्द मलयस्तथा।।२१५

मल्लतालसिंहनाद नान्दीतालं च उत्सवा।
उद्दण्डउद्धट्ट तालं, राजराजचूड़ामणिं।।२१६

अष्टतालत्रिपुटंच षष्ठतालंच कुम्भवेत्।
एतानि विविध तालानि रम्यनृत्ये मनोरमा।।२१७

विषमस्ताल स ख्यातः विपुला एकतालवत् ।
अनुद्रुतद्रुतश्चैव विरामह्रस्वसाधनं।।२१८

एकतालिस्तथाढेका मात्राषड्भिः सुशोभितं।
त्रयस्तालस्त्रयोभेदाढेका आडढेकाउच्यते।।२१९

त्रिढेकायुक्तकल्याण गजह्रस्वचतुष्टयं।
द्वयंद्रुत द्वयोर्दीर्घढेकतालादिसन्निभं।।२२०

एवंकल्याणीसास्तालंनृत्यकाले प्रशंसितं।
द्वयंह्रस्वद्वयोदीर्घह्रस्वान्ते पूर्ववत् तथा।।२२१

ह्रस्वद्वयंपुनःद्वीपुर्घनःढेकादिदीर्घिका।
मात्राद्वयंह्रस्वयुक्त विराममेक शोभितं।।२२२

हंसतालइतिख्यातः लास्ये मुकुन्द एवच।
ढेकाह्रस्वचतुःद्रुतं दीर्घठेकाच मध्यमे।।२२३

ह्रस्वद्रुत पुनर्ह्रस्वह्रस्वद्रुत चतुष्टयं।
मलयदीर्घह्रस्वेच पुनःदीर्घतमेतथा।।२२४

मल्लचतुष्टयंह्रस्वो पुनःद्रुत द्विसंख्यकः।
सिंहनादह्रस्वयुक्तंपुनःह्रस्व त्रयान्वितं।।२२५

द्रुतद्वयंपुनःह्रस्वत्रययुक्तातिशोभना।
ढेकाह्रस्वद्रुतोद्रुताह्रस्वद्वयंच दीर्घिका।।२२६

पुनःढेकाह्रस्वद्रुताह्रस्वदीर्घंचदीर्घिका।
ह्रस्वप्लुतसमायुक्तं उत्सवानन्द वर्द्धिनी।।२२७

ढेकाद्रुतद्वयन्तोच ह्रस्वा उद्दण्डउच्यते।
दीर्घत्रयोउद्धटाच दीर्घाह्रस्वा द्विद्रुतये।।२२८

ढेकाद्रुतद्वयोह्रस्व द्रुतह्रस्वंच दीर्घिका।
पुनर्ढेकाद्रुताद्रुतह्रस्वत्रयद्रुतद्वयं।।२२९

ह्रस्वदीर्घसमायुक्तं राजचूडामणिंतथा।
अनुद्रुतंद्वयद्रुतं ह्रस्वंस्थान तथैवच।।२३०

अष्टताल इतिख्यातः सर्वनृत्ये प्रशंसितं।
द्वयद्रुतं ह्रस्वयुक्त त्रिपुटतालमुत्तम् ।।२३१

षष्ठाद्रुते विश्राम लघुनृत्ये विशेषतः।
पञ्चद्रुता अनुताद्रुता विरामदीर्घिका।।२३२

ताललक्षण मात्राणि ह्रस्वदीर्घप्लुताक्रमे।
द्रुताअनुद्रुताश्चैव विश्राम सूक्ष्मभावना।।२३३

तालमात्रा बहुभेदाः देशकालान्तरे स्मृताः।
नृत्यतत्वा न्वयीग्रन्थे विशदाः किंप्रयोजनः।।२३४

एवंमात्राक्रमेतालभेद स्थान विचारणे।
करणीयं यथाशास्त्रे आचारे नियमे यथा।।२३५

देशाचारेकृतंताल चारी[1] लक्षण साधनं।
तालनास्त्रुततत्भूमिभूम्यानुस्त्रुत नर्त्तनम् ।।२३६

भूमी (क्षेत्र)
समंच विषमाभूमिभूमि पद्मत्रिकोणका।
स्वस्तिकंचक्रवर्त्तुलं चतुरस्त्रादि अष्टधा।।२३७

एबंभूमौषरिनृत्यं कर्त्तव्यानि विधानतः।
भूम्यानुसारिणीचारी भौम्रा[2] इत्यभिधीयते।।२३८

चारी
चारी सा द्विविधा प्रोक्ताभौमीगमनमाश्रिता।
भूमिसम्पृक्तभौमी सा शून्ये गगन नामिता।।२३९

---

१. M.S.S. 2 – छन्द
२. M.S.S. 2 – भङ्गी

रथचक्रापरीवृत्ता स्यन्दिता नुपूरपादिका।
मरालाकरिहस्ता च उरु वेणी च उन्मुखी।।२४०

कातरामृगत्रासाख्या अर्द्धमण्डलिकाक्षणा।
स्थितावत्ताइतिभेदाः चारी भौमीविधानतः।।२४१

मन्दाक्रान्ताअतिक्रान्ता प्लुतानगर मालिनी।
क्षीणाकुटिल चक्राब्ज तोषिणी मनहारिणी।।२४२

एवं बहुविधाचारी गगना नाम धारिणा।
विविधन्यासभेदेन बन्धनृत्ये विचक्षणा।।२४३

ग्रन्थान्तरेषुसूत्राणि यानिपूर्वे सुचिन्तितैः।
पूर्बग्रन्थानुसारेण येनदेशे प्रचारितं[१]।।२४४

युग्मनृत्य

श्रृणुअन्यतमंभेदाः उत्कले यः प्रतिष्ठितं।
युग्मप्रशंसितं नृत्तं पौराणिक स उच्यते।।२४५

विकट रूपभेदेन विविधंपार्वणोचिते।
विविधस्थानभेदेन विभिन्नविषयाणि च।।२४६

विकटद्विविधा प्रोक्तापौराशिक्षयिकातथा।
एकंपुराणमाश्रितं अपरं शुद्धलौकिकं।।२४७

कुत्राभिनयरूपेण श्रीकृष्णचरितावली।
नृत्यप्रदर्शनेकुत्र श्रीमद्रामायणं तथा।।२४८

---

१. M.S.S. 2 यथा देशे प्रचारित

हरिश्चन्द्रस्यकारुण्यं सागरसुत विक्रमम् ।
नानारूपाश्रयेनृत्यं लीलोत्सव स उच्यते।।२४९

मेषेचडकसंक्रान्त्यां चटका पाटवादयः।
विविधरूपयुक्तेन कुत्सितंरूप धारणं।।२५०

पुनःग्रामान्तरेकुत्र *वाउरिरजकादिभिः।
आचरेत्‌विविधंनृत्यं सुरम्येभिल्लनारीवत् ।।२५१

क्वचित्‌ग्राम्यान्तरेरम्ये घोटका, दानवाकृतिः।
रूपाश्रये भवेत्‌नृत्यं विकटं कौतुकावहः।।२५२

नृत्यंगोप्यतमं दिव्यं सर्वानन्द प्रदायकं।
नानाभेदसमायुक्तं मतानि विविधानि च।।२५३

तथापि क्षीणज्ञानेन यन्मया साधनंकृतं।
निवेदयामितत्सर्वं ज्ञानार्थिनांहितार्थये।।२५४

नृत्याभिनयभेदेनभिन्न भिन्नार्थ वर्त्तते।
तथापिसर्वभेदानां पूर्वाचार्य्यअनुश्रुतम् ।।२५५

अथ वस्तुप्रसङ्गेन वेशविन्यासमुत्तमं।
नटज्ञातव्यरूपेण प्रवक्षामि बिधानतः।।२५६

सर्वादौवीक्षणंलास्ये वेश कृत्य सुमङ्गुलं।
वेशदर्शनमात्रेण मनाकृष्टं च जायते।।२५७

वेशविन्यास (चित्रद्रष्टव्य)

विनावेशेनशोभन्ते मुद्रादृष्ट्यादिचालना।
शृणुवेशक्रमंरम्यं देव राजगणप्रियं।।२५८

---

* अन्त्यजजाति विशेषः

चूड़ान्यासत्रिभेदंच पुष्पचूड़ार्द्धवक्त्रकं।
कटिवेणीतथान्यासेत् पिच्छिलं सर्पदेहवत् ।।२५८

शिरोदेशेसुवर्ण्णेनकार्वकरा[1] रागड़ादयः[2]।
चन्द्रं[3]संमुखदेशेच पार्श्वदेशेति शोभने।।२६०

मथा[4]मणिंमध्यदेशेवेकतकी[5] सुमनोहरा।
शिरंमण्डयते एवं सुवर्ण्णेन सुयत्नतः।।२६१

कर्ण्णद्वये कोरकंच[6] अथवा कापएवचत[7]।
त्रिगण्ठिकुण्डलंदिव्यं[8] वीरोवल्योग्रं[9] नर्त्तने।।२६२

कर्ण्णोर्द्धेनागपाशंच[10] बकुलकलिकोत्तमा[11]।
कण्ठाभरणरूपेण न्यासयेत् चापसोरिका[12]।।२६३

आमलकी[13]सर्षपीच[14] चम्पकी[15]कलिकाकृते।
मालान्यासयतेवक्षे काञ्चल्योर्द्धेविशेषतः।।२६४

काञ्चलादिव्यरङ्गेन नानारत्न विमण्डिता।
आवृतंवक्षदेशंच दृढेरम्ये सुयत्नतः।।२६५

मुख्यपदकंसंस्थाप्य वक्षमध्ये सुशोभने।
समान्तरालभावेन पदकंतिलकंतथा।।२६६

गोरोचनांसमालेप्यकपोले उर्द्धवपुण्ड्रवत् ।
भ्रुयोर्मध्ये च सिन्दूरंबिन्द्वाकारे विलिख्यते।।२६७

चिबुके मक्षिकाचिह्नं कृष्णवर्ण्णे विशेषतः।
नयने कज्ज्वलंस्निग्धं मीनपृच्छाकृते सदा।।२६८

वाहुदेशे तायितं[16]चकङ्कणं[17]ताड़कद्वयं[18]।
रसो[19]नवाङ्किता[20]माला निम्ने कवच[21] भूषयेत् ।।२६९

करन्निम्ने अतुलंच[22] कल्यारि[23] करकङ्कणं[24]।
कुङ्कुमेन समालेप्य युग्मंकरतलं सदा।।२७०

नाभिनिम्नप्रदेशेच कटिदेशे मनोरंमे।
भूषयेत् भेकमुखादौ[25] कापमालोपरितथा।।२७१

किङ्किणि[26] निम्नभागेन मध्ये[27]झोवाविमण्डयेत् ।
नीवीबन्धनदृढ़ेन कटिदेशेतिशोभने।।२७२

पाददण्डे दृढारोप्य चापु[28]आणीमनोहरे।
मण्डयेत्पाददेशेन नूपुरं[29] पाहुड[30] बलाः[31]।।२७३

चुपुल्याङ्गुष्ठयुक्तेन[32] अलक्ताद्रवरंजिता।
वेशविन्यास संयुक्ते नृत्य नेत्रप्रियंभवेत् ।।२७४

देशभेदे कथिता सो उड्रगान्धर्वउच्यते।
केवलाभिनयदृष्टे ग्रन्थाभिनय चन्द्रिका।।२७५

ममाराध्यगुरुदत्तंसम्यक्ज्ञानानुसारिणी।
*ग्रन्थाकारे प्रबोधार्थ गान्धर्वकुशलान्प्रति।।२७६

यदिशुद्धमशुद्धं वा द्विरुक्त विषयं क्वचित् ।
प्रसङ्गक्रमभेदेन ममदोषो न विद्यते।।२७७

उड्रदेश प्रशंसा

वैतरणीतटारभ्य यावत्महेन्द्र पर्वतं।
तावत् भूमि सुविख्यातं उड्रनामातिशोभना।।२७८

महोदध्यत्तरेपार्श्वे यत्रप्राची सरस्वती।
तत्र पुण्यतमंक्षेत्रं श्रीपीठे पुरुषोत्तमं।।२७९

नीलाद्रौपरिप्रासादं रम्यंगगन चूम्बिनी।
गङ्गकीर्त्ति इतिख्यातःयावत् भुवनमण्डले।।२८०
सुविख्यातोक्त वंशेऽनङ्गभीमाङ्कितपदे।

ग्रन्थरचनाकाल

खेमण्डिराजमार्त्तण्ड सर्वविद्या विभूषिता।।२८१

श्रीमान्नारायणदेवो भूपालो धरणीपति।
गजपतिपदाक्रान्त राजा सर्वजन प्रियं।।२८२

कविताकुञ्जकोकिलंशिखिवत् नर्त्तनप्रियं।
शुकवत् सर्वदावाक्ये कृष्ण कृष्णेति केवलं।।२८३
एवंसौम्यतमंरूपं भुजबलं पराक्रमं।

---

* M.S.S. 2 – भावखण्डप्रवक्ष्यामि।

राजत्वे वसुवर्षीये पुस्तकमिदं सम्पूर्णं*।। २८४
इतिश्री महेश्वर महापात्रेण विरचित
अभिनय चन्द्रिकायां नृत्यखण्ड
नामा प्रथम स्तवक:।।

●

अथभावभण्डम्

नृत्यंहि सर्बदाश्रेष्ठ:राजकार्य्येमहोत्सबे।
विनोदेब्यसनेचैव नृत्यमानन्द दायक।।१

नृत्यवाद्य विनोदेन चतुर्भवति निश्चलं।
तथापितद्विनाभावं केवलं नर्त्तनं ध्रुवं।।२

भावयुक्ते तथा मुक्ते मन: प्रवृत्तिनिर्वृति।
तदानुसारिणीभावा: विकारा मानसात्मिका।।३

भावहाव तथाहेला अङ्गजानटी मोदिता।
नागरीशोभिता:सर्वे भावलंकार मुख्यत:।।४

निर्विकारात्मिके चित्ते भाव: प्रथम विक्रिया।
स्पन्दनाकृति संभाव मानसाङ्ग विवर्द्धिनी।।५

विनाभावे सदावलीवं मन:मूढ़ो विशेषत:।
भावयुक्ते मनोयाति दृश्यभेदेच ईक्षणे।।६

नायिका नायकभेदे दृश्यादृश्यागमे तथा।
प्रकाशयन्तिअङ्गेन भङ्गीयुक्ते मनोरमे।।७

तत्श्रेष्ठभाव नाम्ना सा नृत्याङ्ग मुख्यद्योतना।
विनाभावे न सिद्ध्यन्ति नृत्याभिनय मुख्यत:।।८

---

* सम्पूर्णमिदंपुस्तकं

इतिमतिगताक्षिप्रा भावनृत्ये विधानतः।
उद्दूदेशेसदाभावरंजितं नृत्यमण्डलं।।९

वटुनृत्योत्तमे लास्ये केवलंभाव मुख्यतः।
छन्दबन्धे तथा नृत्ते भावादि किं प्रयोजनं।।१०

देहेभावगतिरम्ये इङ्गितादि विलक्षणे।
रति विरति संयुक्ते नृत्याभिनयपेक्षणी।।११

सत्वरजोतमो वृत्ते विंकारः भावमुच्यते।
रसज्ञानात्क्रमेभावःनृत्ये आनन्द वर्द्धकः।।१२

रसभेदानि

त्रिभेदगुणयुक्तेन सात्विके सात्विकं तथा।
स्थायीरजोगुणापेक्षी तामसे व्यभिचारिणी।।१३

गुणत्रय विभागेन गुणादिभावलक्षणः।
क्रोधउत्साह हास्यं च शोकभावतथैव च।।१४

भयंचरतिरम्यंच विस्मयंभाव लक्षणं।
युगुप्सा इति अष्टानां स्थायीभावाः विनोदनं।।१५

शङ्कासूया दैन्यचिन्तामोहश्चेति धृतिर्गुणाः।
व्रीड़ाहर्षस्तथागर्वः विषादं स्वप्नचिन्तनं।।१६

निरोधमदनिर्वेदभ्रममालस्य उग्रता।
अपस्मारममर्षादि व्याधिमृत्यूभयं तथा।।१७

वक्त्रे जड़तामालस्यंभ्रमग्लानितथैवच।
निर्वेदइति भावानि त्रिंशश्च व्यभिचारिका।।१८

सात्विकभाव लक्षणम्

शृणु अष्टविधाः भेदाः सात्विकभाव लक्षणं।
स्वेदरोमाञ्च स्तम्भोऽथ स्वरभङ्गादिवेपथुः।।१९

वैवर्ण्यमश्रुपातंच प्रलयादि प्रदर्शनं।
अभिव्यक्तिविमुक्तिं च रतिर्मानस लक्षणः।।२०

त्रिविधाभावमुख्याच रतिज्ञान प्रदर्शने।
इति ख्याता महाभावाः कर्त्तव्यानृत्यवेदिना।।२१

अलंकारमयंभावाः लीलाविलासतत्परा।
भावानुपेक्षितंहाव हेलाअङ्गादि दिप्तिता।।२२

शोभाकान्तिप्रगल्भं च औदार्य्यंधैर्य्यएवच।
माधुर्य्यरति लीला च विलासविभ्रमं तथा।।२३

किलकिञ्चित् विच्छित्ति विव्वोक ललितंततः।
मोट्टायितंकुट्टमितं विकृतादि विमूर्च्छना।।२४

काव्यशास्त्रानुसारेण रतिनृत्ये समाचरेत् ।
उड्डदेशे सदाश्रेष्ठं नृत्याभिनय प्रक्रिया।।२५

साभिनयं सदा काव्यापेक्षणी जनमोहिनी।
यद्यपिकाव्यं हि मुख्यं गानकाल विचारणा।।३६

विनालंकार युक्तेऽन निष्फलंनीरवंसदा।

वटुनृत्य

वटुनृत्ये नहि वाद्यं नहिकाव्य विनोदनं।।२७

केवलंतानयुक्तेऽन स्वैरतालादि मुख्यतः।
तथापिलोचनेओष्ठेकट्यां पादद्वयेतथा।।२८

विनालंकारयुक्तेन नृत्यादि विफलं भवेत् ।
शृणुत्वं लक्षणं दिव्यं अलंकारादयः पुनः।।२९

लक्षणादिसमायुक्ते सर्वकारण संग्रहः।
ग्रीवानेत्रेतथाकट्यांभ्रूभङ्ग्यादिप्रकाशनं।।३०

भावानुपेक्षितंसर्वं अंगादिहाव कथ्यते।
केलिपातंश्चचशृङ्गारे मैथुने कामसूचके।।३१

हेलाइतिरतिभावं नृत्यार्थी मोददायकं।
बेशविन्यासयुक्तेन जूड़ादिकाञ्चलादयः।।३२

त्रिकच्छादि समायुक्ते शोभा अंगविभूषणं।
शोभायुक्ते तथाकान्ति सौष्ठबं लक्षणानिच[१]।।३३

न पृथुलं न चक्षीणं कान्तिमध्यमसुन्दरं।
मध्यांगकान्ति युक्तेन देशपात्र विचारणा।।३४

प्रसंगक्रमभेदेन कान्तिदीप्तिकरंभ्रुबं।
प्रयोगे वा प्रकारे वा पात्रा पात्रविचारणा[२]।।३५

बुद्धियुक्ते तथारंगे क्रीडनेच प्रगल्भता।
सर्वभावान्वये अंग हृदये विनयं महत् ।।३६

नम्रभावानुयुक्तेन नटी औदार्य्य प्राप्यते।
तालमानानुसारेण पादादि पातन क्रिया।।३७

---

१. M.S.S. 2 -न्वित
२. M.S.S. 2 - विचारयेत्

विधियुक्ते तु कर्त्तव्यं धैर्य्ययुक्ते सदानटी।
इतिधैर्य्यसदाश्रेष्ठ नृत्यालंकारभूषणं।।३८

भूषणादिसहरम्यं लीलाविषयभूषणं[१]।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वांगंभूषणानिच।।३९

वेशानुरूपकं अंगरतिमाधुर्य्य उच्यते।
गतिपादादिभिः भंगी मुखनेत्र समन्विते।।४०

चालनादि सुरम्येन विलासंरास मण्डना।
विभ्रमंवटुनृत्येन विरहभावपेक्षणी।।४१

हताशाकामक्रान्ता या नटीविभ्रम मानसा।
इतस्तुते[२] तथामाला वस्त्रादिभूषणादयः।।४२

अव्यवस्थित भूषाच विभ्रमंरतिमुत्तमं।
इर्ष्यापरिविमर्षेच दर्शने दर्शनोत्सुकः।।४३

आकांक्षित इतिभावः नामितं किलकिञ्चितं।
विच्छित्तिव्यक्तभावेन विब्बोकाव्यक्त चिन्तने।।४४

गर्वभावे सदाश्रेष्ठं विब्बोकइति लक्षणं।
शान्तभावानुयुक्तेन रम्ये लघुमनोहरा।।४५

भ्रुवादिचालने मिष्टं ललितं मधुर प्रियं।
प्रियालिङ्गन युक्तेन हृष्टं[३] प्रफुल्ल मानसं।।४६

---

१. M.S.S. 2 – पेक्षणम्
२. M.S.S. 2 – विचारयन्
३. M.S.S. 2 – उत्फुल

उत्फुल्ल

मात्रभङ्गीसमायुक्तेः विपरीताङ्गदर्शनम् ।
हृदयेललितंभावः प्रकाशेक्रोध लक्षणम् ।।४७

एवंव्यतिक्रमरीत्या कुट्टमितं मनोरमा।
नागरप्रीति सन्देशे नागरः पत्रपाठने।।४८

उत्पद्यते यः प्रीतिभावं समोट्टायित कथ्यते।
विरुद्धभाषणेघोरे वटुनृत्ये विशेषतः।।४९

उग्रादिभाव सम्पन्ने विकृतंरतिमुत्तमं।
एवंसर्वविधंनृत्ये प्रपञ्चेऽभिनये तथा।।५०

अलंकारान्वितरीत्या नृत्येषुरम्य सर्वदा।
लघुनृत्ये तथालास्ये रम्यंरम्यतरं [illegible]त् ।।५१

विना[illegible] सुदृष्ट्यादि सकलोनिष्फलो भवेत् ।

नृत्तलक्षण

विनाभिनयभावाद्या विहीनं नृत्त कथ्यते।।५२

रसभावान्वियेनृत्यं रतिनृत्यमितीर्यते।
लघुर्वाताण्डवेचैव रतिमित्यभिधीयते।।५३

रतियुक्तेन लास्याङ्ग उग्रता प्राप्यतेध्रुवं।
कौशिकीवृत्ति संपन्ना सदाललित मानसा।।५४

लघुनृत्योत्तमे नारीश्रेष्ठा प्रहृष्टचेतसा।
आरभटी वृत्तियोगेन उग्रं पौरुषलक्षणम् ।।५५

ताण्डव लक्षण

द्विविधंताण्डवख्यातं पेवलि बहुरूपका।
पेवलिबन्ध नृत्याङ्ग विषमा अङ्गचालना।।५६

योजनाकरपादाभ्यांद्रुता विक्षेपकारणात् ।
लास्याङ्गप्रान्तभागेन अन्तताल समागमे।।५७

यौवनेघ्नुवयुक्तेन नृत्यन्ति नृत्यवेदिनः।
बुहरूपाख्यनृत्येन हावभावादि लक्षणम् ।।५८

छेदनादिकटिपादाः करन्यास प्रयोजनं।
पेवलिउग्रनृत्याङ्गं लीलाग्रे प्रान्तदर्शने।।५९

उड्डदेशे वीणाकार लीलासूत्र धरंयथा।
दण्डनृत्ये तथा पुंसः दण्ड कार[१] विचक्षणः।।६०

सव्यांशे तालधारीच मृदङ्ग वामदक्षिणे।
मृदङ्गमुत्तरेतत्रकांस्यताल द्वयंतथा।।६१

तयोर्मध्येनटीरम्ये पेलविनृत्यचारिणी।
पेलवि वा उद्धटीवा कुतपं मुख्य सर्वदा।।६२

लास्येनकुतपः श्रेष्ठः वटुनृत्येच मण्डलं।
रङ्गप्रवेशमात्रेण कर्त्तव्यं रङ्गमण्डले।।६३

प्रस्तावनाक्रमे नृत्य लीलाविषय वर्ण्णना।
उत्सवेव्यसने चैव युद्धकार्य्य महोत्सवे।।६४

---

१. M.S.S. 2 बीणाकार

पेलविबन्धरूपासा सर्वदाजनमोहनं।
वहुरूपा तथा यशुद्ध उग्रं महेश्वरप्रियं।।६५

साभिनयसमायुक्ते पूर्वरङ्गमनुश्रुते।
मुखताल समान्याय वाद्यताल समाश्रिते।।६६

शिववेशधरः पुंसः अथवा नागरि स्वयं।
कथितंताण्डवंमेढ़ नानारूपधरात्मकः।।६७

अष्टं वा दूशभुजं वा ललाटंतिलकाकृते।
बहुरूपात्मिका नृत्ये बहुधाशङ्करावृति।।६८

सप्तताण्डव नामानि

आनन्द कालिकागौरी सन्ध्या पार्वती एवच।
त्रिपुराताण्डवंउग्रे संहार एव सप्तधा।।६९

एवंनाना,वृत्तेरङ्गे उग्रनृत्य मनोहरं।
पूर्वरङ्गानुसारेण करे हार समन्वित।।७०

वहुधानाम कल्पन्ते नृत्यार्थी नृत्यभेदतः।
करन्यास समायुक्त पदन्यास समाश्रिते।।७१

बहुधाकरणन्यासः कर्त्तव्यं उग्रनर्त्तने।
एकहस्ते सममुद्रा समक्षेत्राङ्ग दर्शने।।७२

मातृकादि वरण

मातृकाइति सख्यातः पक्षेन उपमातृका।
वेदहस्तसमायुक्ते करक्षेत्र कलापक।।७३

वन्धवंयुग्महस्तेन वाणे संघात एवच।
महाघात तथा षष्ठे समुद्रे मण्डलाङ्कितं।।७४

नृत्य की विभिन्न मुद्राएँ

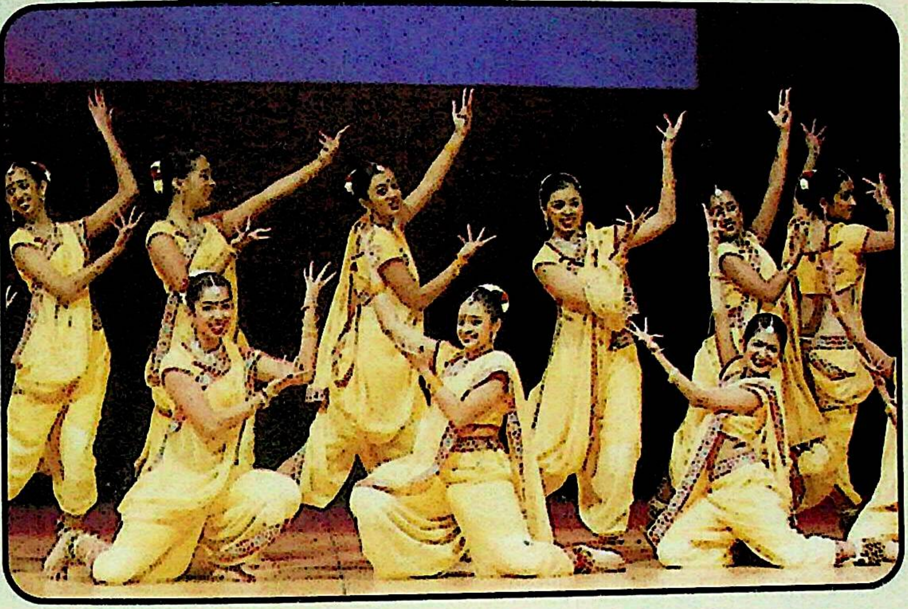

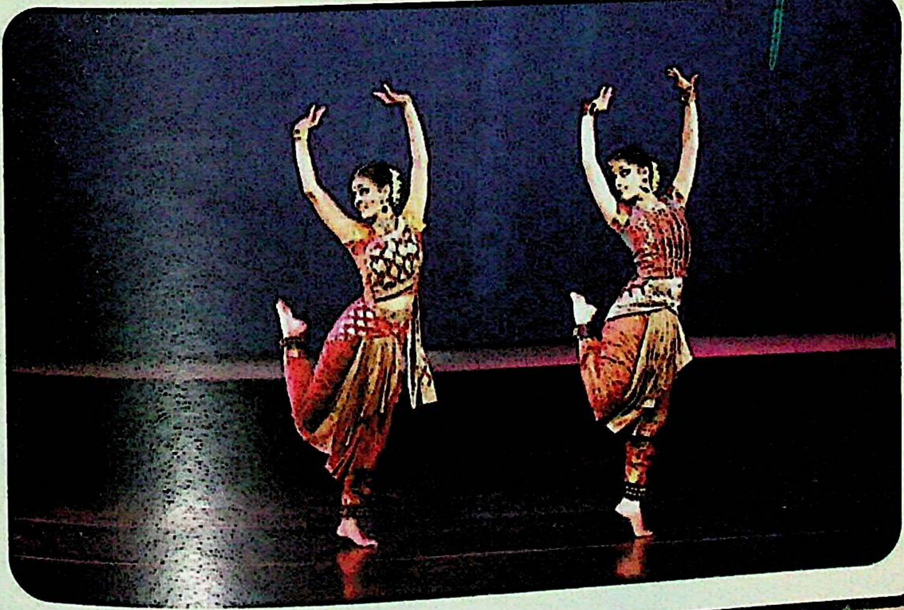

साहित्य सम्मेलन प्रयाग (इलाहाबाद) से सम्बद्ध)
कार्यालय: बी-2/215, पश्चिम विहार, नई दिल्ली - 63

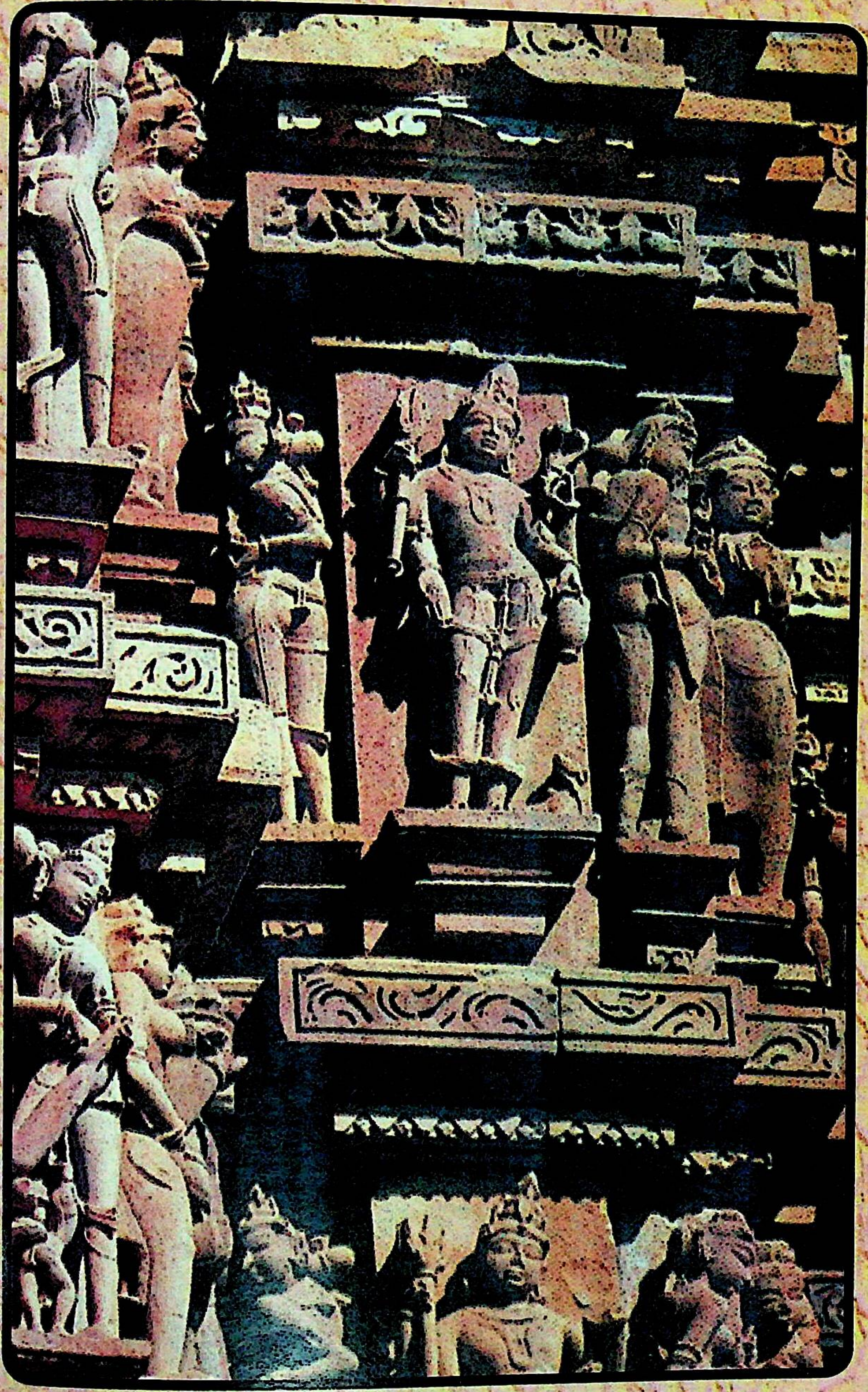

शिव का तांडव नृत्य

पर्य्यायानुक्रमे न्यासः कर मुद्रा सुशोभनं।
बृश्चिककरमुद्रांच भूजङ्गाश्रित साम्भव।।७५

ताण्डव करणानि

अर्द्धसाम्भवसंयुक्ते तल संपूट चारिणी।
लुलितावलिताचैव गुध्रावली तथैवच।।७६

करिहस्तास्वस्तिकंच अर्द्धस्वस्तिक ज्वालिनी।
वरदंआश्रिताचैव चतुरः सौम्यदायकः।।७७

वुंञ्जरवक्त्ररूपाच कर्षणाचार्द्धकर्मठा।
करछत्र महामुद्रा नूपुराज्ञानकर्षिणी।।७८

एकविंशति मुद्राणि वटुनृत्ये शुभप्रदं।
उद्दण्डे समदोर्दण्डे छन्दनेभेदने तथा।।७९

नर्त्तने व्यसनेचैव ताण्डवं शुद्धनर्त्तनं।
मर्द्दलतालयुक्तेन टंकारतन्त्रीशोभितं।।८०

प्रेक्षातालंतथासौम्य अनुतालातिराधवं।
कांस्यतालादि युक्तेन पुंनृत्यं जनरञ्जकं।।८१

वुश्चिक

श्रुणुत्वं करन्यासानि नृत्यार्थीज्ञानवैभवं।
पादाम्यां कुञ्चितातत्र अथवा अर्द्धकुम्भवत्।।८२

शिरोर्द्धपल्लवाभ्यांच पल्लीपृष्ठोर्द्धदर्शिते।
समाकारेभूजाःसर्वे अंगुलिधरर्णीप्रति।।८३

शिरोर्द्धमण्डलेमुद्रा वृश्चिकंतत् प्रकीर्त्तितं।
विक्षिप्तपादयुक्तेन अर्द्धस्वस्तिक मासने।।८४

ध्यानमुद्रासममेवं संमुखे दण्डदर्शनं।
कटिंजानुश्रुतैअंगंत्रिभंगभगी भंगीमा।।८५

अपरंकर संस्थाप्य दण्डे यथावलम्बनं।
मणिबन्धोपरिबन्धं भूजंगाश्रित लक्षणं।।८६

बक्षपार्श्वोत्तमक्षेत्र आरभेत नट पुंगव।
करद्धय पार्श्वक्षेत्रे लम्वाकारेण संमुखे।।८७

साम्भव

समाकारेद्धयो:पल्लि पूर्ण्ण साम्भवमुच्यते।
भूजैकलुलिताकारे सम्भवाकृतिमाकृतिं।।८८

अपराध्यानभावे वा योगंवा आश्रितोपमः
वामांघ्रिकुञ्चितंकुत्र दक्षिणंकुञ्चिताधिके।।८९

तलसंपुटिताहस्तौ उर्द्धवेवा करचुम्बिते।
एककरं सदा सव्ये अपसव्येतथैव च।।९०

अर्द्धसाम्भव

अर्द्धसाम्भवयोगेन तालानुस्रुतमाचरेत् ।
शिरोर्द्धे उर्द्धवगा पल्लि पार्श्वगे अपरातथा।।९१

लुलिताकरयुक्तेन ताण्डवे च मनोहरं।
कटिदेशोपरिन्यस्तं वामे वा दक्षिणेन च।।९२

अपरापार्श्वक्षेत्रेण अभयादि समाश्रिते।
हस्तमेकंपार्श्वक्षेत्रे लम्बाकारेणनिम्नगा।।९३

अपराशिरपार्श्वेच पताककरयोगतः।
उर्द्धवकरसमायुक्ते सूचं वा नागमस्तकान् ।।९४

गुध्रावली

संदर्शयेत् सुयत्नेन कर्त्तव्यंनृत्यवेदिनः।
गुध्रावली इतिख्यातः ताण्डवे सौम्यदर्शनः।।९५

शृणुत्वंसविधिः मार्गं कुंजरवक्त्रलक्षणं।
बृश्चिककरभावेन करमेक प्रदर्शनं।।९६

अन्याचपार्श्वदेशे च लुलिता साम्भवोपमा।
हस्तागुंलिसंमुखेच चुम्बिते सूचीमुखवत् ।।९७

कुञ्जरवक्त्रा

करिहस्तं तु कर्त्तव्यं उग्रे नागारिनर्त्तने।
रेचितंस्वस्तिकं श्रेष्ठाकराम्यां कटि सन्निधौ।।९८

स्वस्तिक

अर्द्धकुम्भाकृते पाद अथवाकुञ्चिताकृते।
कराभ्यांवृश्चिकोन्याये कट्योर्द्धमण्डले तथा।।९९

अर्द्धस्वस्तिक

शुद्धस्वस्तिकएतेषां नारीनृत्ये विशेषतः।
हस्तमेको यथापूर्ब अपरोवृश्चिकोपमः।।१००

अर्द्धस्वस्तिकसौ मुख्यः वटुनृत्ये मनोहरः।
व्याग्रपल्लिसमपल्लि विक्षिप्तचतुरांगुलि।।१०१

सम्यक्न्यूनतरे वक्रं अंगुलि पल्लवंप्रति।
ज्वालिनीकरमुद्रासा उग्रनृत्येप्रयोजनं।।१०२

अभयाकरयुक्तेन शिरोर्द्धे वरदंभवेत् ।
आश्रिता कटियुक्तेन अंगुष्ठंकटिपृष्ठगा।।१०३

संमुखेऽन्यानिसर्वाणि किञ्चिन्न्यूनतलावधि।
केवलंएकपार्श्वंच त्रिभंग्यासन स्वस्तिके।।१०४

नकुर्य्यादुभयोपार्श्वे लास्याग्रे न कदाचन।
छत्राकारे करमेकं अपराकटि पार्श्वगे।।१०५

ध्यानमुद्रा समायुक्ते उत्तानपद लक्षणं।
छत्रहस्तयदापार्श्वे तत्पार्श्वेकुञ्चितापद।।१०६

चतुरं

दृष्टिध्यानकरान्यस्ताचतुरं सा शुभप्रदा।
एकहस्तसमायुक्ते गजशुण्डाकृतिं महत्।।१०७

क्षिप्तपादादियुक्तेन नर्त्तने सौम्यदर्शनं।
छत्राकारेकरमेकंपृष्ठे वा तल पल्लवे।।१०८

दण्डछत्र

दण्डछत्रसौम्यछत्रंनामतः द्विविधोमतः।
भूजदण्डाकृते उर्द्ध्वेकेवलं पल्लिछत्रवत्।।१०९

दण्डछत्र इतिख्यातः ललाटतिलकोत्तमे।
वक्रेणभूजशिरोर्द्धेतलोर्द्धंदर्शितं परां।।११०

सौम्यछत्र

सौम्यछत्र इतिख्यातः उग्रनृत्ये मनोरमं।
कुटिलपादयोगेन दण्डवत् करपल्लवाः।।१११

पक्षाकारे उभयो पार्श्व लम्बाकारेसमन्ततः।
अर्द्धचन्द्राकृते पल्लि निम्नगा अंगुलिं सदा।।११२

नूपुरंताण्डवे श्रेष्ठंलास्येक्वचित् सुखावहः।
नृत्यखण्डंयथाकारे तादृशंज्ञानपल्लवं।।११३

उग्रेच सर्वदाश्रेष्ठः उग्रमुद्राइतीर्यते।
अधुनात्र प्रवक्षामि वटुनृत्यांगभावना।।११४

रतियुक्ते मनोग्राह्यं मुद्राभङ्गी सदाध्रुवं।

महाशाभाव

बुश्चिकोव्यापृताभावेच्छेदने छादने तथा।।११५

स्थितिभावात्मकन्यासः गर्भस्थ इतिज्ञापकः।
स्थितिमुख्यइतिभावःताण्डवे सौम्यदर्शनं।।११६

सर्वाच्छादनरूपेण कर्त्तव्यंवृश्चिकोत्तमा।
भुजङ्गाश्रित्यमाश्रित्य वध बन्धन नैत्तिका।।११७

स्थितियोगात् प्रसङ्गेन कान्ति सौष्ठवईक्षणे।
अनुरक्ति सानुबन्धे निर्बन्धे अभिचेतने।।११८

भुजङ्गाश्रित स ख्यातः पार्श्वक्षेत्रे विधानतः।
साम्भवालम्बनेश्रेष्ठः व्याप्तिभावान्वये सदा।।११९

परिव्याप्तेसदापार्श्वे साम्भवंव्याप्त लक्षणा।
अर्द्धसाम्भव स ख्यातः द्विविधोन्यास मार्जितः।।१२०

एकोसव्यापसव्येन अपसव्यंच दक्षिणे।
सहमुद्राकृते अन्याशिरोर्द्धे न्यासितंध्रुवं।।१२१

एवंन्यासक्रमयुक्ते सर्वदा मुक्तलक्षणं।
चलत्क्रियोद्धवभावे गतिर्गर्वित मानसे।।१२२

उत्ताननृत्यभावेन आचरेत्चार्द्धसाम्भवं।
तलसंपुटितो सव्वे उन्मादलास्य नर्त्तने।।१२३

तालभङ्गक्रमे न्यासेत् भङ्गीमानन्द दायकः।
आच्छादयति सा माया यः शिवस्य कलात्मकः।।

विस्तारंभवति यत्र तत्र तत् सृजनं महत् ।
परिवृतार्थशिरोर्द्धे सृजनार्थेच साम्भव।।१२५

सदासृष्टिप्रदादर्शे कर्त्तव्यंलुलितं महत् ।
करक्षेपण युक्तेन दृष्टिभङ्गी समाचरेत् ।।१२६

नटीप्रदर्शयेत् भावंकरयोगे विशेषतः।
काव्यशास्त्र विनोदेन शब्दादिरस चिन्तनं।।१२७

अष्टादश दृष्टि

नेत्रभङ्गी तथा भावे बहुधा नट लक्षणे।
भोगतीर्यक् उर्द्धवदृष्ट अङ्गार्द्धभूमि संश्रवा।।१२८

स्थिरा अवनताचैव कुञ्चिता घूर्णिता तथा।
मुद्रिताशिवनेत्रंच चालितास्तम्भिता जया।।१२९

एता अष्टादशा नेत्र नृत्ये भावप्रदायिनी।
स्थायीभावेतथादिव्ये व्यभिचारे विचक्षणा।।१३०

ननेत्रभावप्रत्यक्षे सात्विक भाव दर्शने।
देवालये उत्सवे च पटुआरे विशेषतः।।१३१

सेवाकाले न कर्त्तव्यं विविधं दृष्टिभावना।
रङ्गालयेगणेसंधे विचित्र नृपमण्डले।।१३२

नाट्यारम्भे तथामध्ये नृत्य दृष्टिंसदाचरेत् ।
शृणुत्वंदृष्टिभेदेन नेत्र न्यास सुनिर्मलं।।१३३

नेत्रन्यासविना नृत्यं नृत्तं भवति निष्फल।
स्थिरालपनयुक्तेन केवलं पितुलाद्वयं।।१३४

भोग

पादभूमिसमाबद्धे भोगदृष्टि मनोहरं।
आह्वानापेक्षस्थैर्य्येच पराङ्मुख विचक्षणे।।१३५

भोजनग्रहणे सौम्यभागदृष्टिः सदाचरेत् ।
पार्श्वेतिर्यक्मुखं पार्श्वेनेत्रकोणेडोलादयः।।१३६

तिर्यक

दृष्टिसंपूर्ण्ण पार्श्वे च तिर्यक्दृष्टिः स कथ्यते।
सनधानेविह्वलार्थेच मुग्धे च प्रेमभाषणे।।१३७

उन्मादभाव युक्तेन तिर्यक्दृष्टि नटीचरेत् ।

उर्द्ध

संमुखे स्थिरमुखेन उर्द्धवदृष्टिं नभंप्रति।।१३८

नेत्रपट्टस्वयंशान्तःचञ्चलं पितुलाद्वयं।
प्रशान्तव्याप्तभावेन शून्यभाव प्रदर्शने।।१३९

सूररङ्गालयार्थेच नभे वारिवहागमे।
किञ्चित् वक्त्रान्वये मुण्डपार्श्वेस्वगात्र दर्शने।।१४०

अर्द्धाङ्ग

देहपार्श्ववलोके च अर्द्धाङ्गदृष्टिमाचतरेत् ।
प्रेमावशे विक्रितेच नृत्यारम्भे च क्रीडने।।१४१

श्रवणानुरते मुग्धभावे अर्द्धाङ्गलोचनं।
वक्राङ्गयोगसंयोगे कुटिलपादमाश्रिते।।१४२

तलदृष्टिभूमीसंश्रव

पार्श्वेसंमुखभागेन दृष्टिंतलमुखान्वये।
गुल्फोमुखीमुखस्तत्र दृष्टिंभूमौपरिस्थिता।।१४३

एवं, नेत्रोत्तमभाव भूमिसंश्रव लक्षणः।
भग्नभावे संग्रहे च बिषमे तालभञ्जने।।१४४

अनुनत्त इतिवाक्ये शिशुलालन तत्परे।
भूमिसंश्रव युक्तेन नतदृष्टिर्मनोरमा।।१४५

नृत्यप्रान्ते तथाबन्धे कर्त्तव्य नटीमाचरेत् ।
एकपार्श्वाच्च निगृह्य अपरपार्श्व दर्शने।।१४६

इतस्ततःक्षणं दृष्टिः पार्श्वे अपाङ्गचालनं।
विद्युतप्रकाश दृश्येन अपत्यस्नेह माधुरी।
चक्षुणासाक्षणदृष्टि क्षत्रमात्र प्रदर्शने।।१४७

चपला

निर्द्देशरोधभावेन चपलानेत्र मुख्यतः।
चपलाचपले चेति नृत्यमानन्द दायिका।।१४८

विष्फारिता

विष्फारिता सदा उग्रं उग्रं विकट दर्शने।
अद्भूते विस्मिते चैवष्फारिता विरहोत्तमा।।१४९

स्थिरा व्यग्रा

स्थिरानेत्रद्वयेतत्र पितुलाचक्रवत् तथा।
पितुलाचालनेव्यग्रे व्यग्रभ्रावेनुत्तमः।।१५०

आलोडने न कर्त्तव्यं अतिकोपान्वयेतथा।
घर्षणे वा मर्द्दने वा अभिव्यक्ते मनोरमे।।१५१

अभिताड़न युत्तेःन तिरस्कार प्रदर्शने।
व्यग्रा व्यग्रतरा दृष्टिः सदाव्यग्र प्रदायिनी।।१५२

कुञ्चितादक्षिणानेत्र वामाविष्फारितातथा।
पार्श्वदृष्टि सदानृत्ये भय मानस द्योतका।।१५३

विपद्ग्रस्ता नृपत्रस्ता क्षुब्धा उद्विग्रमानसा।

आतुरा

एतेसर्वे भावयुक्ते आतुरा लोचनाध्रुवं।।१५४

अर्द्धस्फारिता

पार्श्वक्षेत्रेभ्रुवोयुक्ते भूमिदृष्टि विधानतः।
अर्द्धोन्मिलित नेत्राभ्यां कथिताचार्द्धस्फारिता।।
पार्श्वयुक्तेद्वयोःपार्श्वे नृत्यप्रारम्भकालीने।
नेत्रइति सुविख्यातः आकर्षभाव सन्निभा।।१५६

प्रेमाकाङ्क्षारतिक्रान्ता आकर्षा कर्षणप्रिया।
संमोहिता इतिभावे नेत्रं कर्त्तव्य नर्त्तकी।।१५७

विस्फारिताभ्रुवोर्मध्ये स्थिरा पुत्तलिकाद्वयं।

स्थिरा

सानेत्र कथिता स्थिरा स्तम्भीभूत क्रियावली।।१५८

स्थिरागम्भीर चकिता सदा आश्चर्य भाविनी।
अद्भूतश्रवणे स्थिरा क्रोधिते रतिभङ्गने।।१५९

मुखसञ्चालने भव्ये संमुखे च पुनः पुनः।
संमुखेनतभावेन पुनः उत्तोलिते तथा।।१६०

तत्सहालोचनाभावे नभोमुक्त क्षणं क्षणं।
मध्येनर्त्तन कर्त्तव्यं अवनता लोचनं सुधी।।१६१

क्रीडामयी नटी क्रीडा मुख्य नृत्यमहोत्सवे।
प्रतितालान्वये हस्त कर विक्षेप सुन्दरं।।१६२

मूर्च्छनातालयुक्तेन दर्भयुक्त? क्रीडास्थले।
मुख्याऽवनतादृष्टिः (भ्रूयुगं कुश्चिताचार्द्धमुद्रिता)
उभयोर्नयनेप्रान्ते कुश्चितालोचनद्वयं।।१६४

पार्श्वक्षेत्रगतादृष्टि भ्रूयुगं चार्द्धमुद्रिता।
मधुरभर्त्सनाक्रोध प्रेमविरह घातिनी।।१६५

निर्द्देशभाब सश्रेष्ठः हृदयोद्वेगमानसे।
स्फारिता भ्रूयुगोर्मध्ये घूर्णिता पुत्तलिद्वयम् ।।१६६

बन्धेनृत्ये सदारम्यं दीपनृत्ये विशेषतः।
सन्धाने लाडने नृत्याक्षिप्तताल प्रदर्शने।।१६७

स्फारितादृष्टि कर्त्तव्या दर्शकानन्द वर्द्धकं।
मुद्रिता
मुद्रिताध्यानरूपा सा सुप्तभाव प्रकाशिनी।।१६८

काव्यानुगत वाक्येन कर्त्तव्यंनाट्यवेदिनः।
अर्द्धोन्मिलित भूरुभ्यां पितुला उर्द्धवगामिनी।।१६९

अर्द्धदृश्याडोलास्तत्र शिवनेत्रा मनोहरा।

शिवनेत्रा

निमग्रा भावयुक्तेन तल्लीना ईश्वरं प्रति।।१७०

योगी योगरता भावे दृष्टि नृत्ये विधियता।
स्वाभाविक मुखे नेत्रे स्वभावा नयनद्वयं।।१७१

नृत्यमुद्रासहभिन्न क्षेत्रे चालनपेक्षिणी।
चालितादृष्टिः सा सिद्धा केवलंकरचालने।।१७२

हस्तकादि समायुक्ते भिन्नाभिन्नः स जायते।
स्वाभाविक नेत्रयुक्ते केवलंश्रवणेरतं।।१७३

एवंभावान्वयि दृष्टि स्तम्भिताकथिता सदा।
अष्टादशदृष्टिभेदे भावंलयानुसारिणी।।१७४

नेत्रापांगइति श्रेष्ठं नृत्यज्ञान विभूषणं।
विनादृष्टि मुखाल्लास भावादि निष्फलंध्रुवं।।१७५

दृष्टिर्लपनवक्षे, च कटिपादकरद्वये।

नृत्यषड़ाङ्ग

भावंसन्दर्शयेत् नित्यं षडांग अंगभावना।।१७६
विनाषडंग ज्ञानेन नृत्यंदेशि स जायते।
श्रृंगारवीरकरुणोहास्यरौद्रोभयानकः।।१७७
विभत्स अद्भूतोशान्तः सर्वेषड़ांगपेक्षिणः।

नेत्रमुख्यतरं नृत्ये मुखभावप्रदायकः।।१७८
हास्यक्षुब्धंच व्यादान रुद्धं विकटमेवच।
लुलितंक्षिप्त लपनं स्फारितंनम्रमस्तकम् ।।१७९

नवमुखभेद

भावरसादिसंयुक्तेः नवधामुखमाचरेत् ।
लास्यहास्यमयं श्रेष्ठं अधरे पार्श्वदर्शने।।१८०

अधरप्रान्तभागेन कुञ्चिता अधर द्वयं।
क्षुब्धोलुब्धक प्रेमांग शृंगार भावधारिणी।।१८१

ओष्ठद्वयं समोभागेऽवनता संमुखादपि।
प्रसारित ओष्ठद्वयोः व्यादानं च भयानकं।।१८२

रसनाकुञ्चित गर्भे व्यादानंमुखलक्षणं।
ओष्ठद्वय समाबन्धे वीरभाव प्रदर्शने।।१८३

रुद्धमुखंसदाउग्र नर्त्तनेताण्डवे सदा।
विकटमुखकूटेन पृथक् वा मिलितेनवा।।१८४

दंशनदर्शनघोर रौद्रभावसमान्विते।
नतोष्ठद्वययुक्तेन लुलितंअधरंप्रति।।१८५

लुलित करुणनृत्ये तापसन्तापज्ञापिनी।
क्षिप्तविभिन्नदशनां स्फारिता कुञ्चितातथा।।१८६

भिन्नक्षेत्र गताओष्ठंविभत्सरसमाश्रया।
स्फारितेओष्ठदशनं इतस्तंतांगचालनं।।१८७

नानाभंगीसमाश्रित्य अद्भूतोरस स मद्भूतं।

नवधामुख

नम्रप्रशान्त बदन निर्विकल्पो समंमुखः।।१८८

शान्त रसज्ञ नम्राख्य मुख लक्षणमुत्तमं।
नवधामुखसंख्यात नृत्यार्थीरसज्ञपने।।१८९

नेत्रमुखद्वयोर्युत्तेः भावंप्रवृत्ष्टजायते।

वक्षभेद

मुखसमान्विते वक्षं ख्याता त्रिविध कामतः।।१९०

भद्रंसव्योऽपसव्येन नृत्यार्थी वक्षभूषणं।
भद्रसंमुखयोगेन सव्यासव्यानुगा तथा।।१९१

अपसव्यानुगावामे चालितो भयपार्श्वयोः।
कटिलक्षण चत्वारः स्थापनिक्रमभेदिनः।।१९२

कटिचत्वारि

वामातुं गदक्षतुंग उत्तुंग तलतुंगिका।।
कटिस्थाने कटिन्यासः तेषां वक्षामि लक्षणं।।१९३

एषवैनृत्य अंगच ज्ञातव्यंनृत्यवेदिनः।
बामकट्योपरिभाग अपसव्येनतोलिता।।१९४

सव्येसव्यकटि न्यून वामतुंगविधानतः।
कटिदेशे समाकारे दक्षिणे पूर्ववत् सुधीः।।१९५

सव्यतुङ्ग इतिख्यातः कर्त्तव्या सा विधियतेः।
समभागेकटियुग्मो सौम्यसंमुखदर्शने।।१९५

समतुङ्गेन उतुङ्ग नृत्यार्थी मोददायकः।
निम्नगा तल चुम्बि सा विक्षिप्ता विपरीतगा।।१९६

विक्षिप्तभावचरणा क्षिप्तनाभि प्रतिष्ठिता।
बन्धनृत्ये सदारम्यंतलसंपुट चारिणी।।१९७

कटिचतुर्विधा मुख्या उग्रेलास्ये विशेषतः।
कट्यानुसारिणी पाद ताल पादानुभाविनी।।१९८

चतुरपादन्यासंच कुम्भदण्डंच सायकं।
विषमन्यास एतेषां मुख्यांध्रि नृत्तनर्तने।।१९९

भूम्यानुसारिणी पादः पादानुघातिकः गति।
कट्यानुसारिणी भंगी अपरे किं प्रयोजनं।।२००

वामतुङ्गानुयुक्तेन सायकपादमुत्तमं।
दक्षतुङ्गेतथान्याये सव्यदेशे मनोहरे।।२०१

समतुङ्गसमायुक्ते कुम्भदण्डंतथैवच।
विषमाबहुधासर्वे तल संपुटगामिनी।।२०२

भरतादिकृतेशास्त्रे चतुरः स्वस्तिकादयः।
सर्वेचतुरन्यासेन जायते नात्र संशयः।।२०३

नृत्यारम्भे च प्रारम्भेदण्ड पादादिमाचरेत् ।
काव्यवाक्य प्रकाशेन दण्डपाद विगर्हितं।।२०४

नर्त्तने कुम्भहि श्रेष्ठः अभिताल प्रदर्शने।
कुम्भमुख्यसदानृत्ये सर्वभाव समन्वये।।२०५

सायक युग्म नृत्येन वाक्यालापे परस्परे।
उपर्य्युपरि पादाभ्यां संचालयेत नर्त्तकी।।२०६

विषमबहुधानृत्ये छन्दोबन्धे सुशोभिता।
*ललाटतलगले बन्धे उत्तालतालदर्शने।।२०७

रससंयुक्त पादाभ्यां सर्वेभावानुसारिणी।
दण्डपादे सदाशान्तं करुणहास्यदर्शयेत् ।।२०८

कलशेरुद्रश्रृङ्गारः चापे वीर रसात्मकः।
विषमे अद्भूते भीतौ विभत्सरस दर्शयेत् ।।२०९

रसयुत्ते सदापाद पाद संयुक्त गायने।
गायनानुसृतो हस्त एतानिधत्स्व धारणा।।२१०

सस्व, निरव, भेदः
द्विविध लास्ययोर्मध्ये निरवं सरवं तथा।
सरवे सरसेवाक्य निरवे निष्प्रयोजनं।।२११

निरवे मुख्यदृष्टिनां हस्तेन चारिणादयः।
सरवं हस्तयुक्तेन दृष्टिवाक्य विनोदनं।।२१२

क्रमेणैवं सदानृत्य देवतानन्द वर्द्धकः।
मुक्तिप्रदंसर्वकाम स्वर्गमोक्ष प्रदायकं।।२१३

सरवोनिरवो नृत्ये नृत्य संघातमण्डले।
वाद्यादि सहिते वाक्य करमुख्य विशेषतः।।२१४

काव्य वाक्यगते भव्य दृष्टिमाकर्षणोत्तमं।
कटितालानुभावेन पाद मानास्रूतं तथा।।२१५

---

* ललाटतिलक

सर्वेभावगताः सर्वे वाद्य वादित्रशोभने।
मण्डलानुगते वाद्यं नट्यादिगायकादयः।।२१६

शुद्धमण्डल युक्तेन गायकी सुन्दरीनटी।
समागानरतानारी तिष्टन्तिवाद्यकारिणः।।२१७

त्रिविधमण्डलं

मण्डलंत्रिविधोश्रेष्ठं उत्तमोमध्यमोधयमः।
उत्तमेन सदा श्रेष्ठं नर्त्तकी नर्त्तनप्रिया।।२१८

चत्वारो वादको श्रेष्ठः मृदङ्ग कांस्यतालिका।
वीणावाद्यरता रम्या नायिका समगायिका।।२१९

एवंपञ्चजनै र्युक्तैः उत्तमं मण्डलंविधि।
लास्यनृत्ये सदाश्रेष्ठः राजराजगणः प्रियः।।२२०

मध्यमे उत्तमानारी नर्त्तकीदिव्यभूषिता।
मृदङ्ग कांस्ययुक्तेन उत्सवे हरिकीर्त्तने।।२२१

वहुनर्त्तकीयुक्तेन वहुवाद्य परिवृत्ते।
मृदङ्गकांस्य वीणाद्या पट्टह तालपट्टिका।।२२२

एवं नानाविधो वाद्यं वह्वोपगायिकागणाः।
सहरासादि नृत्याङ्ग अधमो मण्डलैःसह।।२२३

रासोल्लासविलासादि अङ्गविक्षेपपेक्षणी।
मात्र सुनृत्य युक्तेन हस्तभावविचक्षणां।।२२४

हस्तन्यास सदाश्रेष्ठः लास्येसात्विकभाषणे।
शृणुतं हस्तभेदानां भावानुश्रुत सर्वदा।।२२५

पूर्वाध्याये यथाउक्त ध्वजादि हस्तकं क्रमात् ।
तथान्यायेश्रृणु न्यासंभावज्ञानानुसारतः।।२२६

ध्वजादिहस्तक प्रयोगविधि

ध्वजहस्तसदाश्रेष्ठा लास्येउग्रेविचक्षणा।
नानाभावमयंहस्तनृत्यार्थीमोददायिका।।२२७

ध्वजहस्तसमायूक्ते पार्श्वे संमुखे एवच।
पृष्ठेपृष्ठरते उर्द्धव नानाक्षेत्रे प्रदर्शयेत् ।।२२८

नृत्यारम्भकृते पार्श्वे कम्पयिता क्षणे क्षणे।
मेघागमे द्वयोःहस्ते मण्डलाकृति दर्शयेत् ।।२२९

अरण्यदर्शने पार्श्वे आवृत भाव लक्षणे।
एकहस्त समायुक्ते निषेधभावज्ञापिका।।२३०

मदनार्त्ति रतिभावे कुचसन्धि प्रदर्शनं।
एकपार्श्वान्तिमारभ्य अपरान्त जलागमं।।२३१

हस्ताद्वयसमायुत्ते हृदक्षेत्र समन्विते।
केवलंवृत्तमध्येन पल्लिममर मण्डने।।२३२

कुरङ्ग खण्डनेभावे एकतिर्यक्प्रदर्शनं।
मरुतागम व्यक्तेन एकहस्तेन चालनं।।२३३

शयनरतिभावेन कर्ण्णपुटे च पल्लवा।
गमनोद्गमने वाम पल्लवे दक्षिणायनं।।२३४

प्रतापे च द्वयोः पार्श्वे निम्नगा अङ्गुल्या सह?
प्रसादे अंजलिबद्धे चन्द्रिका उर्द्ध्व दर्शने।।२३५

क्षिप्तताले एकहस्तात् विक्षिप्ताङ्गुलिदर्शनं।
क्षणे क्षणे पार्श्वदेशे आरूह्यहृदयस्थलं।।२३६

गन्तव्ये वामपार्श्वेच दक्षिणे अचलासने।
परस्पर द्वयोर्युक्ते स्थिरभाव प्रदर्शनं।।२३७

शीतलभाव संदर्शे रति विपरिता वृते।
प्रसन्नहृदयार्थे च एक सम्यक्शिखोपरि।।२३८

आह्वान रति मुख्ये च नृत्यमध्ये सुशोभनं।
पार्श्वमानीयहस्ताद्यैः पल्लवंहृदयावधि।।२३९

एतानि ध्वजसंयुक्ते नानाभाव समन्वये।
देशभेदे तथाचारे नानाभावे पृथक्पृथक्।।२४०

सर्पशिराप्रयोगः

रम्यासर्पशिरानृत्ये नानाभाव प्रदर्शने।
लज्जावनतभावेन कर्ण्णपार्श्वेमनोरमा।।२४१

संमुखपार्श्वभागेन हृदय पार्श्व दर्शने।
प्रतीक्षाप्रेमविषये हस्तकः श्रेष्ठ कथ्यते।।२४२

स्थिरेणैक पल्लवेन अपरे कर्षचिन्तने।
आनयन् अन्यभावेन करणीयं क्षणे क्षणे।।२४३

दोलायमान अर्थेन पार्श्वेपल्लिद्वयोर्द्धवगा।
आकुञ्चिते प्रसारेच काव्यवाक्य विनोदने।।२४४

ललित करणेरम्यं मुग्धभावे मनोरमं।
सव्यपल्लि कटिक्षेत्र उर्द्धवगा अङ्गुलिद्वयं।।२४५

अपसव्योर्द्ध युक्तेन शीरदेशे च निम्नगा।
उत्तोलित पदभागे दक्षोत्तोलन तत्परा।।२४६

मोहने मोहनाभङ्गी सर्पशिराकरद्वये।
एकंहृदयपार्श्वेच संमुखे पल्लिदर्शनं।।२४७

अपरे अपरपार्श्वेलुलिता निम्मगांगुलि।
धनुपादांगयुक्तेन मोहनं नृत्यभूषणं।।२४८

वक्रेपार्श्वे गुल्फभूमौपरि पल्लिप्रदर्शयेत् ।
अपराउर्द्धवदेशेन शिरदेशे विमण्डिता।।२४९

मूर्च्छनाभाव इत्येवं सर्पशिरा करान्वये।
कल्पना भीषण रिक्ता अनुरागप्रदर्शने।।२५०

वलयाप्रयोगः

वलयालास्य योगेन कपित्थकथिता पुरा।
दृढ़भावेमृषाभावे अनिच्छापृष्ठ चिन्तने।।२५१

अनुबद्ध समाबद्धे अगुंष्ठं तर्जनीसह।
युक्ते युक्तिगत वाक्ये भावार्थअर्थदीपिका।।२५२

उत्तरीयधृते नृत्ये पार्श्वेसंमुख दर्शने।
वलयबद्धभावेन स्थिराभाव प्रधानतः।।२५३

ध्यानप्रयोग

ध्यानतद्गतभावेन ध्यानाध्यान विमाहिते।
अनुध्यान प्रबोधेच ध्यानपल्लि स उत्तमा।।२५४

प्रबोधिता तथाकारे विपरीतांग दर्शनं।
नानाभावे गतिर्हस्ते तदानुमित्र पल्लबा।।२५५

अङ्कुशाताल नृत्येन कटकामुख विस्तरात् ।
सहिसंकुचितो भावे मित्र भावानुसारिणी।।२५६

दीक्षाशिक्षाद्वयोः भावे दण्डपार्श्वगतेध्रुवं।
उग्रनृत्ये चिन्तनार्थे सँदातत्र प्रदर्शयेत् ।।२५७

मुद्रादृष्टिसमाबद्धे घूर्णिते नृत्य मध्यमे।
आवर्त्ततिभावेन नटी आनन्ददायकः।।२५८

लुलिताद्वयपार्श्वेन एकमुखा च पल्लवा।
मुद्रायुक्ते इति मुद्रासौम्यंसौभाग्य दर्शने।।२५९

संमुखेरोहणतीक्ष्ण दोहण विषमावृत्त।
लुलितकर योगेन नृत्यं सबाँगसुन्दरं।।२६०

निषेधानास्तिभावेन विरोधात्मक चिन्तने।
प्रेमाभिव्यक्ति योगेन मुद्रा लास्ये प्रयोजनं।।२६१

ताम्रचूडाकृत पल्लि उत्क्षिप्तभावपोषणे।
मुद्रितंस्फन्दितंभावे क्षिप्तांगुलिक्षणे क्षणे।।२६२

निषेधापार्श्वदेशेन काव्यानुश्रुत लक्षणे।
धिक्कारा पल्लिसख्यातः समभावानुसारिणी।।२६३

सूचीमुखाकृतिहस्त भरतशास्त्रसम्मतः।
निर्देशसूक्ष्मभावेन मुद्रा परिचयात्मकः।।२६४

हंसाख्यकरयोगेन उपचारादिधारणे।
नायकानुगते सम्या नायिकाप्रेमदायिका।।२६५

इति समगता मुद्रा हस्तभाव प्रचारिका।
असमवृत्ति योगेन शृणुत्वं पुटिताक्रमम् ।।२६६

हंसपक्ष इति मुद्रा पार्श्वेनृत्य समागमे।
उड्डीयमान भावेन क्षीणनृत्याङ्गभावतः।।२६७

पार्श्वदेशे नृत्यमध्ये मूर्च्छना लक्षणान्विते।
विक्षिप्तभाव-योगेन तालमानसमाश्रये।।२६८

प्रेरणाचोदना क्षिप्ता विक्षिप्ताङ्ग प्रदर्शने।
प्राप्तेशून्यघटाग्राह्ये घनवारिघनागमे।।२६९

वाद्यतालसमायुक्ते कंपने भयसूचिते।
हंसपक्ष सदापार्श्वे उर्द्ध्व वा पार्श्वमण्डले।।२७०

गोमुखा मुख्यभावेन तालयुक्ते मनोरमं।
प्रेक्षाभावे क्षिप्ताभावे प्रशान्तभावदर्शने।।२७१

सन्धाने उग्रभावेच ताण्डवेप्रियदर्शनं।
दिगन्तदर्शने मुख्यःचतुर हस्तयोगतः।।२७२

युद्धेयुद्धरते क्षुब्धे विक्षेपे शरकर्षणे।
प्रेमाकर्षे संमुखेच पार्श्वेच तलमाश्रिते।।२७३

शरक्षेपाकरश्रेष्ठः वीरभावप्रदर्शने।
अर्द्धचन्द्रकरश्रेष्ठः उग्रनृत्ये विशेषतः।।२७४

स्थापनेस्तम्भनेऽगम्ये हृदिदेशे सदाचरेत् ।
अर्द्धचन्द्र उग्रनृत्ये आधारभावमुख्यतः।।२७५

निकुञ्चकामहाहस्त उग्रेलास्ये विचक्षणा।
उत्तरीयादियुक्तेन कटिदेशा विशोभिता।।२७६

स्थिराभावेऽनुबन्धेच आश्रिते आश्रितामहत् ।
अर्द्धस्वस्तिकभावेन कटिन्यासः क्रमोदितः।।२७७

उभयंकटियुक्तेन क्रमतालप्रदर्शने।
नृत्यकाव्यान्तयोगेन करकट्योपरितथा।।२७८

चतुर्मुख उग्रहस्त उग्रभावादिलक्षणे।
दारणे मारणेचैव अरिगात्र विदारणे।।२७९

झंपने लंफने घोरे वनेश्वापददर्शने।
चतुरव्याघ्रपादाख्य मुद्राभरतमार्गतः।।२८०

मृगाक्षा वक्षदेशेच पाशपाशविमोचने।
बन्धने इति संख्यात पाशानुबन्धचिन्तने।।२८१

शुकचञ्च्वाकरयुक्ते अभुध्यानानुभावनः।
काव्यप्रकाशमध्येन वाक्यभावप्रचारिका।।२८२

शिवकरायोगमुद्रा तल्लीन भावतत्परा।
ध्यानध्यानरता उग्रे लास्ये च परिशोभिता।।२८३

आरत्रिका देवभोग्या क्षिप्ताक्षिप्त प्रदर्शने।
विक्षिप्तभावयुक्तेन उग्रउग्रातिभावतः।।२८४

करीवक्त्राकृतिन्याये ताण्डवेसिद्ध सर्बथा।
आच्छादने कृष्यकर्मे गजशुण्डाकृति करः।।२८५

श्रुतिकुल्यात्तोलितादि तद्वत् तालप्रदर्शने।
व्याप्तिभावनायोगेन उग्रनृत्याङ्गमण्डने।।२८६

आसनादिपञ्चषड् वा देवनृत्ये विशेषतः।
केवलंनिरवेशान्त करन्यास निवेदनं।।२८७

मुग्धाति भावयोगेन विरहा विरहानले।
रतिसुक्ते आलसे च वलयांघ्रिमनोरमा।।२८८

विभङ्गा भङ्गभावेन छेदविच्छेद चिन्तने।
पोटला वासभावेन स्थिरभाव प्रदर्शने।।२८९

विराज राजिता मुग्धा प्रेमभावे समर्पिता।
क्रीड़ाप्रेमानुसिक्तश्च विराज न्यास न्यासिते।।२९०

गोपना गोपने चैव मर्द्दलावाद्य वादने।
वादित्राभावयुक्तेन उत्सवे उत्सुकागतिः।।२९१

नन्दावर्त्ता करश्रेष्ठा ताल नृत्यागमे तथा।
तालानुसारिते मुग्धा इतिभाव प्रदर्शने।।२९२

प्लावनेतरले चैव प्रेमानुप्रीतिभावने।
तरङ्गाक्षालनेरम्या सदाआनन्द दायिका।।२९३

आकुञ्चिते सञ्चिते वा छत्रके छत्रभूषणे।
समर्पिताङ्ग व्यक्तेनऽसंयुता करदर्शनं।।२९४

पुटितापुट योगेन उभयं पल्लिमिश्रणे।
शृणुहस्तगुणादर्श नृत्यज्ञानानुपेक्षितः।।२९५

द्विविधापुटिताबन्धे करपाद मनन्वयः।
केवलंकरयुक्तेन पुटिता नृत्यसौष्ठवः।।२९६

बद्धानिबद्धभावेन प्रतिज्ञाचिन्तनोदये।
दृढ़ाभाव इति मुख्ये संपुट करलक्षणः।।२९७

निष्ठास्वनिष्ठ वक्तव्य काव्यशब्दानुसारिणे।
निरवे सरवे चैव लास्योग्रे च तथैवच।।२९८

युद्धे संघर्ष चिन्तायां बद्धे निबद्ध भावितं।
स्थिरचिन्ता प्रदर्श्येच मेषयुद्ध मनोरमं।।२९९

कर्त्तरीस्वस्तिकाभग्री पृथक् दण्डंहिकेवलं।
उग्रेलास्योभयोहस्त दृढ़भावाति ज्ञापकं।।३००

छन्दहस्तद्वये शीर्षे छत्राकारेण पल्लवाः।
सौम्यपादगतिर्यूक्ते नृत्याङ्गं भूषणं सदा।।३०१

उन्मुक्ता भाव युक्तेन मृदुचरण चालनं।
तालयुक्ते करन्यस्ता भूमिदेशे मनोहरे।।३०२

पार्श्वसंमुखयुक्तेन छन्द पल्लव चूम्बिता।
एवंगम्बूज ऋद्धा सा नृत्यकर्म विचक्षणा।।३०३

ककटासूक्ष्मभावेन कुम्भका दृढ़मङ्गुलि।
भेदयुक्ते इतिहस्त आलस्य भावलक्षणं।।३०४

पृष्ठेवा पल्लवे वापि पार्श्वे वा संमुखेनच।
प्रदर्शन इतिमुद्रा न्यस्त ताल प्रदर्शने।।३०५

भेकासना महामुद्रा नृत्यप्रान्तेतिशोभना।
नृत्यान्ते नृपपाशेन उपवेशन प्रक्रिया।।३०६

प्रणत भङ्गी एतेषां युग्मे यौवत एवच।
उग्रनृत्ये सदाध्यात्वा आचरेत् न्यासविस्तरं।।३०७

महाशङ्खा सदाख्यातःवीरनृत्ये विचक्षण।
वाराह स्वरूप हस्तं उग्रेभूतत्व चिन्तने।।३०८

प्रख्यातौ संमुखे ख्यातः उग्रेलास्ये द्वयंतथा।
चतुरङ्गलियुक्तेन निष्ठा तत्वादि मुख्यतः।।३०९

खटा इति महामुद्रा पूर्वशास्त्र निरूपणे।
पार्थक्य केवलंन्यासे अङ्गुष्ठान्यासलक्षणं।।३१०

क्षातप्रक्षात व्याप्ति वा प्रशान्तभावचिन्तने।
मग्नानिमग्नभावेन लास्यादिनर्त्तनोत्तमा।।३११

प्रक्षाताविपरीतेन चुम्बितेन परस्परे।
पातनेचिन्तिते उग्रे हृदिक्षेत्रे सदाचरेत् ।।३१२

प्रणताअंजलिमुद्रा नृत्यराज्ञेसमर्पणं।
प्रान्तान्तनृत्ययोगेन आचरेत् नटीमुत्तमा।।३१३

एतानि करन्यासानि नानाभाव समाश्रिते।
नृत्येलास्ये तथाउग्रे हस्तकाभावमाश्रिता।।३१४

वन्धनृत्यः
बन्धनृत्ये न च भावं न सम्यक् रसचिन्तनं।
केवलंक्षेप विक्षेप अङ्ग बाहुल्य लक्षणं।।३१५

शरीरचालनंमात्र आसनादिविलक्षणं।
बन्धयोगेन नादानांस्थिरं भवति निश्चितं।।३१६

नादब्रह्म सदामुख्यो गान्धर्वज्ञान तत्वतः।
विना नादानुसन्धाने गीतगानादिं निष्फलं।।३१७

बन्धनृत्ये नहि गानं न सौम्य भावदर्शनं।
नहिवाक्यविनोदादि अङ्गचालन केवलं।।३१८

गगनातोरणादिषु सर्वंआनन्द दायकं।
राजप्रियंसदाबन्धः करविक्षेप साधनं।।३१९

मुखे बहुमति गानं हस्तेच अर्थदर्शनं।
नयनेभावमुख्याश्च पादताल प्रदर्शने।।३२०

हस्तयुक्तेसदादृष्टिःदृष्टिर्मानस गोचरा।
भावरसप्रदानृत्ये मानसी मानसात्मिका।।३२१

भावप्रकाशयुक्तेन दृष्टिमुष्टि विचक्षणः।
केवलंहस्तयोगेन सौम्यभाव प्रदर्शनं।३२२

रसभावात्मिका नृत्य नटी मोक्षप्रदायिका।

भावप्रकाशभङ्गी
प्रकाशयति भावानां करयोगे न संशयं।।३२३

तर्जन्याधरयुक्तेन मानसन्ताप ज्ञापिका।
कनिष्ठादर्शने क्षुब्धविरहंप्रीतिनिष्फले।।३२४

कपालंकरयोगेन विषाद खेदचिन्तनं।
कातरोहृदये न्यस्तंकरपल्लिविशेषतः।।३२५

बाहुद्वयेद्वयोः पल्लिविपरीते परस्परं।
वीरभावानुबन्धेन वाहुस्फोटः स विद्यते।।३२६

करस्पर्शेन कुचाभ्यां कामिकामरतात्मिका।
कर्ण्णपुटे करन्यस्ते सम्भ्रमे श्राव्यचिन्तने।।३२७

कटि उभय पार्श्वेन उन्मत्ता नृत्यगौरवा।
एकपार्श्वावलम्बे च अलसा भाव मोहिनी।।३२८

एवंनानास्थलेन्यस्ते हस्तं बहुरसान्वये।
नृत्याङ्गपरिशोभन्ते रङ्गे रङ्गालये तथा।।३२९

न भावविहीनानृत्य न भाव रस वर्जिता।
न रस भाव युक्तेन सर्वाभिनय निष्फलं।।३३०

यथाभावारसाश्चैव भावयन्ति परस्परं।
तथाभावान्वित भङ्गी नृत्याभिनय विस्तरं।।३३१

रसाभिनययुक्तेन नृत्यमुत्तम जायते।
आधिदैवतः
रसार्थेचिन्तयेत् नम्रे नृत्यादौ अधिदैवतं।।३३२

शृंगाराभिनये विष्णुं हास्येऽनंगं च चिन्तयेत् ।
करुणेशङ्करं सोम्यं रौद्रेच कालीदण्डधृक्।।३३३

वीरेरुद्रमहाकाल भीते भीमशङ्करी तथा।
विभत्से लोर्कपालस्तु अद्भूते चतुराननं।।३३४

एवंसंचिन्तयेत् देवं नृत्यार्थी मोददायकाः।
नृत्यं भवति निर्विघ्नो रसभावाःव्यवस्थिता।।३३५

एवंसंक्षिप्तरूपेण भावज्ञानानुसारिणः।
देशभेदे यथादेशे उड्रीत्यातिशोभनं।।३३६

अशुद्ध शुद्ध वा त्यक्तं अथ वा आत्मकल्पिते।
ममदोषो न धर्त्तव्यं भावाभिनय वर्ण्णने।।३३७

नारायणोमहीपालो खेमण्डि खण्ड मण्डन।
रसज्ञ रसिकश्रेष्ठः राजा गान विशारदः।।३३८

सर्व्वविद्याढ्य श्रीमन्तो कविकल्पलताश्रयी।
हृदयानन्दमर्थेन ग्रन्थाभिनयचन्द्रिका।।३३९

रीतिन्यासोत्तमे नृत्यखण्डं श्रीखण्डपुटितं।
भावरस समायुक्ते भावखण्डोदरं महत्।।३४०

महेश्वर द्विजश्रेष्ठः चन्द्रकल्पेश्वरार्च्चक।
ग्रन्थोऽयंरचितं नृत्यं भावज्ञान विमण्डितं।।३४१

इति श्रीमहेश्वर महापात्रेण विरचित अभिनयचन्द्रिकायां
भावखण्ड नामा द्वितीय स्तवकः।

छन्दखण्डम्

छन्दशास्त्रं महत्पुण्यं नादज्ञान स्वरूपिणी।
दशांगभेदयुक्तेन छन्दःसंगीतमुच्यते।।१

श्रुतिस्वर मूर्च्छनाच वृत्तिस्थान गुणस्तथा।
वर्णालंकार धातुना जातिः दशांग मुख्यतः।।२

भरतादि कृतग्रन्थे दशांगनिर्णयं महत् ।
स्वरछन्दे सदाध्येयं हीनागीतः सकथ्यते।।३

षडजः ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा।
पंचमं धैवतं सप्तनिशादादि स्वरादयः।।४

प्रतिस्वरांतराले च श्रुतिबहु विधाचरेत्।
श्रुति समूह ग्रामंच ग्रामावरोह केवलम् ।।५

अवरोहाकृते मुख्याःजायते विकृताः स्वयम् ।
गांधाराक्रोहे यांति अंतर्गांधार उच्यते।।६

विकृतस्वरयुक्तेन[१] गानकालो स्थिरो भवेत् ।
ग्रामहीन स्वरमेतदारोहे मुख्यकेवलम् ।।७

गानकाले स्वराङ्गे च समंग्रामान्वयी यथा।
सम्वादी समभावेन विवादी विषमे तथा।।८

विश्राम स्वर भेदेन मात्रानुरूप मूर्च्छना।
मात्रांतरालयुक्तेन अष्टकं श्रूयते सदा।।९

---

१. M.S.S. 2 विभङ्ग

उदात्तनिःसृता वाणी गावर्णेस्वरविक्रिया।
ऋषभो धैवतो युग्मं अनुदात्त इतीर्यते।।१०

उभय स्वर मध्येन ऋषभ "ऋ" क्षरान्वयी।
धा धैवत मात्रा सा अनुदात्त क्रमान्वये।।११

स्फारितांगेत्रिधा मुख्यं षडजःमध्यमस्तथा।
षडजे मा तथाकारे पा बीजं पंचमे तथा।।१२

मूर्च्छनादि समाक्रान्ते दीर्घ ह्रस्वादि जायते।
गानकाले कदाह्रस्वं दीर्घं वा मन्द्र मुख्यतः।।१३

स्वरं देवगतं सर्वे सदा आनंद वर्द्धकम् ।
स्वयंभूःस्वरधाता च षडजे ब्रह्म दैवतम् ।।१४

ऋषभं अर्यमाचैव धैवतं सिद्धमेव च।
मध्यमं मरुताश्चापि स्वरोष्ठ इति कथ्यते।।१५

गांधार कुशली श्रेष्ठं गांधारेऽधिष्ठितं सदा।
पञ्चमे वरुणश्चैव निषादे मातृकादयः[१]।।१६

स्वरानुसृत वाणीभ्यां छंदः शब्दसमन्वये।
दीर्घस्वर सदावक्षे कण्ठे मंद्रनिवेशितम् ।।१७

मस्तके लघुनादं च त्रिविधं स्वरमंदिरम्।
ध्वनियुक्ते तथा न्यासो वाणीन्यासः चतुष्टयम् ।।१८

समनादात्मिका स्थायी संचारी क्षणिका दृढ़ा।
उर्द्धवनादः सदारम्यः आरोही उच्चगामिनी।।१९

---

१. M.S.S. 2 सप्तमातृका

निम्नगाक्रमनिम्नेन अवरोहण कथ्यते।
एवं संगीतयुक्तेन वाणीमुख्या चतुर्विधा।।२०

गीतभाव प्रकाशार्थे करन्यास समन्विते।
स्थायी वाणीसदाश्रेष्ठः संचारी वटु नर्त्तने।।२१

आरोहे करणं श्रेष्ठं नीरवे भंगीदर्शनम् ।
अवरोहण संयुक्ते अंगमात्र विशेषतः।।२२

वटुनृत्ये सदाश्रेष्ठः संचारी वाणी मुख्यतः।
गीततालसमाहारे क्रमव्यग्रक्रमेक्रमे।।२३

क्रमोर्द्ध्व गतिशीला सा वाणीताल समन्विते।
कुमार स्वरश्रेष्ठं च विस्तारे करणं महत् ।।२४

नृत्यारंभे स्वराभ्यासे वहिर्गीतं समाचरेत् ।
आलाप इति नृत्यांग उकुटादि समन्विते।।२५

ततः समांग भावे च करयुक्ते विशेषतः।
स ख्यातोऽभिनयोमात्रा तालपादादि मुख्यतः।।२६

मात्रागीते सदारम्या द्रुतमध्यविलम्बिते।
द्रुते मात्राधिकं प्रोक्ता ह्रस्वे निम्नां सुनिश्चितम् ।।२७

विलम्बिते समश्चैत्र लम्बने लम्बितावृते।
दशप्राणमयः तालः दर्शयेत् मार्गविस्तरात् ।।२८

यत्राभिनय मध्ये च मात्रालुप्ता भविष्यति।
शुद्धनृत्ये समाध्यायेत् केवलं हस्तकोत्तमम् ।।२९

नीरवे हस्तकं श्रेष्ठं सरवे करज्ञापनम् ।
स्वरगीति समायुक्ते छंदो नृत्यविधियते।।३०

नृत्यांगे स्वरसर्वाणि वाक्यभेदे पदद्वयम् ।
करभावान्वये मुख्ये दृष्टि निर्द्धारणं तथा।।३१

श्रुतिभेदेन नृत्यंच पृथक् रीति विधियते।।
श्रुतिभेदाः
उड्रे भावप्रकाशार्थं श्रुति मरव्यां हि केवलम् ।।३२

श्रुतिश्चतुर्बिधा ख्यातागुरु मृदुसमस्तथा।
अर्द्धश्रुति इति ख्याता श्रुतिज्ञान चतुष्टयम् ।।३३

संगीतार्थं श्रुति मुख्या शृणुनृत्य प्रयोजनम् ।
अरोहे गुरु मुख्यंच च न तत्र पादचालनम् ।।३४

अवरोह समायुक्तं यत्र विषय वर्णना।
कर्त्तव्यं तत्र नृत्यं च मृदु भागेन संशयम् ।।३५

समभावे यथागीते ध्रुवमावृत्तिमुत्तमम् ।
यत्रसमं[१] समग्रामे[२] यमकः स विधियते।।३६

यमको गीतयुक्तेन मूलताल[३] समन्वये।
वद्नृत्यं तथाकाले कर्त्तव्यं नृत्य वेदिनः।।३७

गीतकाले स्वरांतेच यथामात्रादि खण्डितम् ।
स अर्द्धस्वर स्थानं च गीतज्ञानेन उत्तमम् ।।३८

---

१. M.S.S. 2 त्रय
२. M.S.S. 2 वृत
३. M.S.S. 2 वृत

नृत्यार्थी अर्थभेदेन केवलं अंग दर्शयेत् ।
भंगीभिन्नं तथागीतं न कुर्यान्नटीमुत्तमम् ।।३९.

कुतपगण संयुक्ते उत्तर गायिका तथा।
खंडगान समायुक्ते कुर्वन्ति गान खंडितम् ।।४०

मूर्च्छना वाद्ययुक्ते च श्रुतियुक्ते मनोहरे।
कुर्वन्ति अवरोहादि नृत्य संगी विचक्षणः।।४१

मूर्च्छना सा पृथक् रूपा स्वरविकृत गायने।
गायनादि समायुक्ते नाट्यांगे सा प्रयोजना।।४२

मृदंगनादभेदेन मंद्र मध्य धीरादयः।
पेलवी
पल्लवी गीत प्रांतेच वटुनृत्यार्थी कारयेत् ।।४३

द्विविधं पेलवी मुखेव भावस्वरानुसारतः।
भावयुक्ते पदभ्यां च कराभ्यां हस्तकान्वये।।४४

भंगीयुक्ते यदानृत्यं भाव पेलवी कथ्यते।
स्वरयुक्ते स्वराकारे द्रुतेच पादचालनम् ।।४५

स्वर पेलवि स ख्यातः तालानु पेक्षितः सदा।
स्वरानुछंद मात्रादि गीताभिनयमाचरेत् ।।४६

छंदनृत्ये सदाध्यायेत गीत भावतः।
गीतलक्षण
गीतं तत्त्रिविधं मुख्यं देशीग्राम्यं च संस्कृतम् ।।४७
देववाणी सदा ध्यायेत् देवनृत्ये विशेषतः।
छंदग्राम समायुक्ते लौकिक वाणीमुत्तमम् ।।४८

सदेशी कथितो शास्त्रे उपगीति इतीर्यते।
विनाछंदार्थ बोधंच रस ग्राम विवर्जितम् ।।४९

स भाषाग्राम गीतश्च हीनः गीतमहोत्सवे।
पात्रा पात्रार्थये भाषानिर्वाचयेत् सदासुधीः।।५०

भाषानुरूपकं पात्रं सात्विका द्विगुणक्रमात् ।

गुणभेदे नृत्यभेदाः
सरव रज स्तम इति भेदाः सर्वत्र विद्यते।।५१

छंदनृत्ये तथान्याये त्रिधा जायेत सर्वदा।
शुद्ध शास्त्रीय सछंदो भरतादि समर्थितः।।५२

दैवानुग्रहप्रीत्यर्थं नृत्यं तत्सात्विकी स्मृतम् ।
रंगालये नृपस्याग्रे तालमान रसाश्रये।।५३

लास्यछंदगतं नृत्यं राजसी साभिधियते।
स्त्री वेशधारी पुरुषो नृत्यछंदादि शोभितः।।५४

तामसीकथितं देशे लोकाचार अनुस्तुते।
देवालये रंग क्षेत्र अथवा नृपसन्निधौ।।५५

तामसी नृत्यं न कुर्यात् छंदज्ञ न विवर्जितम् ।
केवलं व्यसनार्थंच ग्राम्ययात्रा महोत्सवे।।५६

यवननृपतोषार्थं प्रेरयेत् पुंस नर्त्तकी।
धर्महीन नृपस्तुच्छः स्पर्शने नटीनिन्दितः।।५७

देवकार्यार्थं, न योग्यः अथवा नृपसेवने।
यद्यपि नर्त्तने पुंसः समर्थो जायते क्वचित् ।।५८

विना स्त्री अङ्गयुक्तेन भावः कुत्र विचक्षणः।
विना भावे सदा हीनं गीतं वा अङ्गमाधुरी।।५९

छंदज्ञानार्थं सा श्रेष्ठा नृत्यं सरव कथ्यते।
छंद गीतावृत्ते नम्रे आचारादि समाचरेत् ।।६०

नृत्यारंभे शिष्टाचार विधिः

श्रृणुत्वं विधि नृत्यांगं शिष्टाचारस्य लक्षणम् ।
दण्डपाद समायुक्ते ललितं मुखमाश्रितम् ।।६१

कटिपार्श्वे तथा न्यासेत् कटिबद्ध करद्वयम् ।
किंचित् तिर्यक् गतियुक्ते कुर्य्यात् धीरांघ्रिचालनम् ।।६२

धत्तादि शब्दयुक्तेन नटीमाचरेत् सदा।
ऊर्द्धवाग स्थिररूपेण कट्योर्ध्व मंडले सदा।।६३

केवलं जानुपादाभ्यां संचालयेत् मुहुर्मुहुः।
एवं प्रारभीते नृत्यं नृत्यार्थी गुरुचिन्तयेत् ।।६४

ततः श्रीविग्रहं ध्यात्वा यथा देवस्य तद्रूपम् ।
कुतपादि समावेशे कर्त्तव्यं इष्टवन्दना।।६५

तदानुसारिणी नेत्राः स्थायी दृष्टि विधानतः।
दैवं वा प्राकृतं वाणी नटीमुच्चारयेत्तथा।।६६

अञ्जलि कर संयुक्ते दर्शयेत् करपल्लवाः।
लतांकुरे यथाकारे पल्लवं परिदृश्यते।।६७

तथा पल्लवी नृत्यांगे आचरेत् नाट्य वेदिनः।
प्रतिगीतांतरे रम्ये प्रतिपादान्वयेतथा।।६८

वटुनृत्य लक्षण

पल्लवि नृत्य स ख्यातो वटु नाम्रा विशेषतः।
ध्रुवादि छंद संयुक्ते यत्रावृत्त्या स्मरेत् पुनः।।६९

तत्र नृत्यं सदाख्यातं उकुटादि क्रमान्वये।
पेलवान्ते तु कर्त्तव्यं गीतगानं यथाविधि।।७०

भावानुसारतः नादमुच्चरेत् रसयोगतः।

रसानुस्त्रुते स्वराचरणम्

वीर रौद्रं च अद्भुतं भावगीते विधानतः।।७१

षडजं ऋषभं श्रेष्ठं गीयते नाट्यमुत्तमम् ।
विभत्से भीति संयुक्ते धैवतं सुसमाचरेत् ।।७२

कारुण्यं हास्य योगेन गांधारश्च निषादकम् ।
आदिरस प्रकाशार्थे मध्यमं पंचमं द्वयम् ।।७३

शांत वात्सल्य तत्तुल्यं मध्यमेन सुखावहः।
विनाभावमयं गीतं रसतालादि वर्जितम् ।।७४

निन्दित वाणी स हीना ग्राम्य गीतः स कथ्यते।
विनालंकार शब्दादि उपमादि विवर्जितम् ।।७५

ग्राम्य गीत इति हीनं ध्येयं नृत्य समुत्सवे।
वनेग्रामे पुरे चैव नगरे वा जनागमे।।७६
जनानन्दार्थं यन्नृत्यं ग्राम्यनृत्य इतीर्यते।

ग्राम्यनृत्यभेदानि

रासोल्लासं भ्रामरीच प्रेरणी भिल्लमेवच।।७७

चड्डुक मेढ गंधर्वं पाटवं बहुरूपकम् ।
चित्रं हलपि आलक्तं चंचूपुटं च ऋक्षकम् ।।७८

नवपंचक शून्यं च घटनृत्यं मनोहरम् ।
वीरनृत्यं तुङ्ग नत्यं रुद्रदंड विचक्षणम् ।।७९

उदण्डमश्व भृत्यं च नानामूर्ति समाश्रितम् ।
बंधनृत्यं उत्कटं च नृत्तं रुच्यानुसारतः।।८०

उत्सवे व्यसने ख्यातं नृत्यछंदादि वर्जितम् ।
विनाभावस्तथा तालः लयादि ग्रामवर्जितम् ।।८१

ग्राम्यगीत समायुक्ते केवलमंगचालनम् ।
मुख भंग्यादि संयुक्ते मिश्र रस प्रदर्शनम् ।।८२

ग्राम्यनृत्यं न कर्तव्यं देवाग्रे नृप सन्निधौ।
उत्सवे व्यसने चैव पटुआरे विशेषतः।।८३

नानानृत्यं तु कर्त्तव्यं श्रृणुतल्लक्षणं क्वचित् ।

रास

रास मंडल युक्ते च राधिका ब्रज नंदनः।।८४

सखीवेशधराः सर्वे नट श्रेणी विशेषतः।
श्रीकृष्णचरितं पुण्ये गायंति स्वरमाश्रिते।।८५

तालादि रहितं छंदं मृदंगनाद केवलम् ।

उल्लास

नटीद्वय समाकारं समवेश विभूषिते।।८६

करछंदान्वये नृत्त्यं कुर्बन्ति गीतमाश्रिते।
विवाहे जन मध्ये च व्यसने च वरागमे।।८७

उल्लास नृत्तं तत् ख्यातं वेशोत्कृष्टं हि केवलम् ।

भ्रामरि

हस्त सुम्र मालाच गले पुष्पविभूषणम् ।।८८

कुंच कांचला संयुक्ते भ्रमंति नट वेगतः।
भ्रामरी स इति ख्यातं विचित्र भूषणाम्बरम् ।।८९

प्रेरणि

ढकवाद्यगते नृत्तं जनमानंद वर्द्धयेत् ।
नटी वा नटयुग्मे च गीतमान महोत्सवे।।९०

प्रश्नोत्तरछले गीतं गायंति युगले तथा।
विनाभिनय संयोगे केवलांग प्रदर्शनम् ।।९१

गीत प्रत्युत्तर श्रेष्ठं प्रेरणी मधुरं सदा।

भिल्ल

द्विपी चर्माम्बरं रम्यं शिखी पुच्छाग्र शोभितम् ।।९२

गुल्मजहार संयुक्तैः नृत्यंती नट नर्त्तकी।
प्राकृतगीत गायंति थेइया धेइयादि मिश्रितैः।।९३

भिल्ल नृत्यमिति ख्यातं ग्रामांते आचरेत् सदा।

चड्डुक
व्याधरूपधरः पुंसकः रम्य नटी समायुक्तैः।।९४

पौराणिकाख्यायिकादि गायंति मधुरैः स्वरैः।
ढमालिका ढगश्चैव खंडशब्दादि पुरितैः।।९५

उत्ताल नृत्तगानं च कुर्वन्ति चड्डुकाद्वयम् ।
मेढ़
रंगतादि समाबेशे प्रभामंडल वेष्टितम् ।।९६

वृत्रिमकर दंडादि मुखोदर परिवृते।
नानाभरण भूषश्च सुचित्र वनसावृत्ते।।९७

नानारूप समायुक्तैः नृत्यंति नटमुत्तमम् ।
कात्यायनी महाकाली धूर्जटी मंगलाकृतिः।।९८

नृसिंह रूपयुक्तेन मेढनृत्तं मनोहरम् ।
काहालादि समावेशे मृदुतालानुसारतः।।९९

नृत्यंति नट श्रेष्ठं च मेढं कष्ट प्रदायकम् ।
गन्धर्व
यूथिका मालतीमाला अलंकारादि मंडितम् ।।१००

फलपुष्पालकायुक्तैः नानागंध विलेपितम् ।
मर्दल तालयुक्ते च कटिभंगी प्रदर्शिते।।१०१

नृत्यंति नट सहस्यः रसिकवर बेष्टितम् ।

पाटुआ

देवपादोदकं धृत्वा दंडं घट समन्विते।।१०२

शिरदेशे तथादंडं पाटुआभ्यां पदद्वये।
कुंचफेरतथा योवा घर्घरी श्रेणीमंडितम् ।।१०३

ख्यातं दैवालकं नृत्तं नानाभंगी समाश्रितम् ।

बहुरूप

म्लेच्छज व्याध पुरुषः सदाहीन नटोऽधमः।।१०४

नानारव समायुक्ते नृत्यंति लोक मंडले।
भिक्षार्थं नृत्य कुर्वन्ति कुत्सितरूपमाश्रिते।।१०५

बहुरूप इति ख्यातं बालकानां सुखावहम् ।

चित्र

अंगेरंगं समालेप्य वैचित्र वसनावृतम् ।।१०६

नट नृत्यं प्रदर्श्यन्तिचित्रनृत्तं तदुत्तमम् ।

हलपायन

शंकुपट्ट समावृत्तैः ग्रामांतेरूप कुत्सितैः।।१०७

नटः भयेतथा रम्ये नृत्यंति ढोल वादने।
एकोनटोयदि तत्र आलक्त सहि कथ्यते।।१०८

शिरदेशे पल्लवादि अधिके हलपायनम् ।
वैचित्र वसनैर्युक्तैः नानाभरण भूषितैः।।१०९

कटि भागोपरि घण्टि माला घर्घरीकावली।
स्कन्ददेशे पक्षगुच्छ रुक्षरूपी नटोधमः।।११०

चंचुपुट

बृहत् चंचु मुखाग्रेच चंचु पुटः सविदिताम् ।
विकृताकृति पादं च करग्रीवा मुखोदरम् ।।१११

ऋक्षक

ऋक्षाकार मुखयुक्तैः नृत्यंति क्रूर ऋक्षकम् ।
किशोर पंच वामे च दक्षिणे नव संख्यकान् ।।११२

नवपंचक

नृत्यंतिछंद योगेन करपादान्वये तथा।

शुन्य

अर्द्धचन्द्रं स्वस्तिकं च महापद्माकृते क्वचित् ।।११३

रासमण्डल न्यायेन रचन्ति बंधमुत्तमम् ।
अत्युच्च बंशदंडाग्रे चक्रमध्ये विचक्षणे।।११४

दर्शयन्ति क्रीडाभंगी देशगीतावलम्बने।
नागबंध चक्रबंध पुष्पबंधाति शोभने।।११५

शून्यबंधादि कुर्वन्ति बलिष्ठा नायिका वली।
शून्यनृत्य इतिश्रेष्ठः व्याधनारी प्रदर्शित।।११६

दंडनिम्ने कुटाहश्च कडादंडादि मुख्यतः।
कटियुग्मे मस्तके, च कलशं पर्ण शोभितम् ।।११७

वहन्ति नटिनस्तत्र भ्रमंति गीतमाश्रिते।

घटि

घटि मुखोपरी कुत्र नाना भंगी प्रदर्शने।।११८

ग्राम्यगीते तथा रम्ये रमंति ग्रामवासिनः।
वामे चर्म तथा सव्ये खड्गमेकं सुनिर्मलम्।।११९

वीर

कटिदेशे काछटा च घण्टिमालाविभूषितम्।
बाहुदंड खड्गदंड दंडविपरीताकृतिम्।।१२०

क्रीडन्ति वीरयुगलं बंध वाद्य महोत्सवे।
तुङ्ग नृत्त इति श्रेष्ठः पंचाधिके यदि क्वचित्।।१२१

वीराङ्गनृत्य एतेषां रुद्रदण्ड विचक्षणः।

तुङ्गनृत्य

शिरेपद्माकृतिश्शूल नानास्त्र भूषितं वरम्।।१२२

कांडताटि समायुक्ते नृत्यंति वीररूपतः।
उदंडश्च महाकाय अग्रेपृष्ठे जनद्वयम्।।१२३

नृत्यंति अश्वरूपेण वृषभादि रूपाकृते।

विभङ्गबन्ध

विभंग बंध पुटिता पाटलादि यथाक्रमे।।१२४
आचरेत् बंध दृश्याभा वटु आदौविशेषतः।
उत्ताले करपादाभ्यां अति वक्राकृते तथा।।१२५

नृत्यमध्ये प्रकुर्वन्ति विचित्र नटीमुत्तमम् ।
नृत्याभिनय मध्ये च केवलं बंधमाचरेत् ।।१२६

अन्यनृत्यं सदाहीनं वर्जयेत् नृत्यवेदिनः।
प्रति गीतांतरेयत्र वटुनृत्य प्रयोजनम् ।।१२७

आचरेत् बंध अंते च नृत्यादौ न कदाचन।
बंधनांते नटी क्षेत्र गुरुं ध्यात्वा विचक्षणे।।१२८

स्थायी भंगी समायुक्ते चालयेत् पदपल्लवाः।
मृदंग नादसंयोगे पातयेत् पादमुख्यतः।।१२९

यथा वाद्य तथा पाद पाद वाद्य यथाक्रमे।
स्मरेत् वाद्यं सदा ध्येयं नादशब्द विधानतः।।१३०

वादित्र करघातेन ताल ष्पटोभिजायते।
तत्ताल समरूपेण पातयेत् पादनर्त्तने।।१३१

मुखे वाणी वपुर्देशे भंगी कर्त्तव्यनिश्चितम् ।
शृणु मृदंग तत्वं च नादस्थानादिकं क्रमात् ।।१३२

भेदं च करघातं च प्रयोगादि सुनिर्मलम् ।
मृदंग नृत्ययोगेन त्रिविधमुत्तमं सदा।।१३३

समश्च मुरजश्चैव गोमुखाकृति गोमुखम् ।

मृदङ्गलक्षण

वामेदिगाङ्गुलि श्रेष्ठं दक्षिणे अष्ट मुख्यतः।।१३४

कुत्राधिकं प्रकुर्वन्ति देशरुच्यनुसारतः।
पनसे वांधणे चैव गंभारि काष्ठनिर्मितम् ।।१३५

मध्ये गर्भ प्रकुर्वींत द्वादशांगुलि यत्नतः।
वामेकिंचित् प्रशस्तं च दक्षिणे न्यून क्षीणतः।।१३६

मृदंग इति स श्रेष्ठः नृत्यकर्मे प्रयोजनम् ।
मृण्मय निर्मितं गात्रं नकुर्य्यात् हीनसर्वदा।।१३७

गोमुखः मुरजः सर्वे रंगनृत्ये प्रयोजनम् ।
पार्श्वाभ्यां मंडलाकार दृढ़चर्मीविनिर्मितम् ।।१३८

कालि कथित भाषायाद्विपार्श्वे समरूपतः।
तन्मध्ये किरणं तत्र द्विपार्श्वे मंडलाकृते।।१३९

दक्षिणे न्यूनरूपेण वामे यव त्रयोधिके।
तद्युक्ते शब्दमाकृष्य ग्रहमात्रानुसारतः।।१४०

वामांशे घन नादानि प्राप्नुयात् विधिपूर्वकम् ।
वलाढ्य समायुक्ते रुजुभ्यां चर्मनिर्मितम् ।।१४१

स्वराबद्धार्थं तद्देयं बलाढ्य समायुतः।
तन्मध्ये स्वरतंत्रार्थं गुल्म चाष्टसंयोजयेत् ।।१४२

नादकर्मे सदाध्येयं गुल्मावली विशेषतः।
ताल मात्रादयः सर्वे वामेढेकादयः पुनः।।१४३

सप्तमध्ये दक्षिणांशे आचरेत् चतुरं तथा।
वामांशेकृष्णकिरणे केवलं अंगुलि यदि।।१४३

स्पर्शयेत् द्रुतभावेन कत्तंधन्[१] शब्दजायते।
धा धित्यादि द्रुताः सर्वे वामदेशे मनोरमा।।१४४

तातित्यादि निशारादि मुख्यतः दक्षिणे तथा।
धिलाङ् धलाङ् धत्ताधित्ता कत्ताद्या उभयात्मकम्।।१४५

ज्ञानानुसारतः वाद्यं वादयेत् वादकोवरः।
प्रतिगीतांतरे रम्ये ध्रुवादि स्मरणाकृते।।१४६

वादयेत् द्रुतमात्राभ्यां यथारागानुसारतः।
गीतमात्रानुसारेण तालमात्रा अनुवृते।।१४७

वादित्र वाद्य संयुक्तै दर्शयेत् नादमुत्तमम् ।
नादानुगत पादाभ्यां मात्रानुसारतः न्यसेत् ।।१४८

सा हि कथित नृत्याङ्ग भरतादि समर्थितम् ।
मृदंगांगे यथानाद नटीपाद तथाकृते।।१४९

स्वरानृसृत पादपात

स्वरानुसृत तालाभ्यां आचरेत् नटीमुत्तमा।
पादस्य दक्षिणपार्श्वे मध्य देशे विशेषतः।।१५०

धा, तत्र वर्त्ततेनि, च कनिष्ठातलमाश्रिते।
वामांशे ऊर्द्धवदेशेन तनाद्यंगुष्ठचालने।।१५१

---

१. M.S.S. 2 किनत्ता धिना

गा संधितलयुक्तेन धत्तादि पूर्णपातने।
पादनाद समग्रामे स्मरेत् नादंच नर्त्तकी।।१५२

नादभ्रष्टे सदानृत्य निन्दितं नृपमंडले।
नादतालानुसारेण भावहाव प्रदर्शनम् ।।१५३

गीताभिनय बेलायां कर्त्तव्यं सावधानतः।
नादपादसमे चैव समभंगी गतेध्रुवम् ।।१५४

भंगीव्यतिक्रमो, यत्र नृत्यतत्राऽधमो भवेत् ।
भंगीयुक्तेतु कर्त्तव्यं पादन्यासादिकं तथा।।१५५

उकुटानुसृत नाद तदानुसृत पादयोः।
स्वरमानसमग्रामे यत् खंडछंदगीयते।।१५६

उकुटलक्षण

तालानुसृत वर्णाभ्यां उकुटाख्य इतीर्यते।
सानिधादिऽक्षरं नादमुच्चारयति कुतपाः।।१५७

तद्वर्णानुगते नृत्यं कुर्वन्ति नृत्यवेदिनः।
तत्ताल योग संयुक्ते नात्रानुगत अक्षराः।।१५८

सा च वदंति नृत्यज्ञ उकुट वाणी लक्षणम् ।
ज्ञानानुसारतः नादं कर्त्तव्यं विधिपूर्वकम् ।।१५९

हीनमात्रा सदा त्याज्या नृत्यगान महोत्सवे।

ठाणिलक्षणं

उकुटानुसृत ठाणी करणानुरूपं क्रमात् ।।१६०

ठाणीयुक्त तुकर्त्तव्यं नृत्याभिनय यत्नतः।
गीतभावानुसारेण षडङ्गादि प्रदर्शने।।१६१

अंगन्यास इति ठाणी नृत्यार्थि मोददायकम् ।
हास्यादि रस सर्वाणि पंचहेतु समन्वये।।१६२

निवसायंति गीतार्थं ठाणी तदनुरूपकम् ।
लक्ष्यापलक्ष उपमा निवृत्तिमंतरा तथा।।१६३

पंचहेतु

पंचहेतु सदाख्यातः भावनृत्ये विशेषतः।
छांदानुविषयं बोधे भावमुख्याति जायते।।१६४

तल्लक्ष मुख्यरूपेणऽभिनये तादृशं भवेत् ।
नृपादि मंडलार्थे च मुख्याभिनय चिन्तयेत् ।।१६५

वर्द्धयेत् दर्शकानंद उपलक्ष इतीर्यते।
काव्य वस्तु प्रकाशार्थे उपमाचित्त व्यंजकम् ।।१६६

कर्त्तव्यं तु तदाकारं हस्तकादि विलक्षणे।
काव्यावृत्ति स्थले गीते भिन्नरसमुपस्थिते।।१६७

अङ्ग चांचल्य तत्तुल्यं निवृत्ति इतिकथ्यते।
गीताभिनय मध्ये च प्रांते ध्रुवपदं स्मरेत् ।।१६८

पेवली मृदु नृत्यं वा ध्यायेत्तत्र न संशयम् ।
अंतरा इति नृत्यांग दर्शकानंदवर्द्धक।।१६९

पंचहेतु इति श्रेष्ठः छांद नृत्ये विशेषतः।
छांदस्यविषयाभ्यासे यत् भावाभिनयमुत्तमम् ।।१७०

नटीतद्भावहृदये स्थापयेत् स्थिररूपतः।
नानारस समाकृष्टे यद्यपि भिन्नलक्षणम् ।।१७१

प्रकाशयंति नृत्यार्थी न त्यजेत्लक्ष्यमुख्यतः।
यत्रसम्बोधनं शब्दं गीत बोधे भविष्यति।।१७२

तत्र मृदुपदक्षेपे क्षिपेत् दृष्टि नृपार्थये।
उपलक्ष इति नृत्ये गीताभिनय लक्षणे।।१७३

उपमाविषय भेदे दर्शयेत् विधि पूर्वकम् ।
काव्योपमा सदा ग्राह्य अंगहार क्रमान्वये।।१७४

उपमा दर्शयेत्तत्र यथावाक्यानुसारतः।
निवृत्ति उत्तरा ग्राह्या तत्रसाकृति व्यंजना।।१७५

पादभंगी सहहस्तं दर्शयेत् झटिति तथा।
भावोन्यार्थे सदाकुर्यात् अन्य न्यास यथाक्रमे।।

निवृत्ति गीतमर्थेच सदानन्द प्रदायकः।
गीतांते ध्रुवमावृत्ये तत्तालानुसृते पदः।।१७७

चालयेत् द्रुततालाभ्यां प्रत्यावर्त्त्यं पुनः क्षणात् ।
यथापूर्वे प्रारंभेच तत्तुल्यं भंगी संग्रहेत् ।।१७८

प्रारभ्यते तदाअन्य गीतपदं यथाक्रमात् ।
गीतान्ते पदप्रांते वा लघुनृत्योऽथवा गुरुः।।१७९

मात्रानुसृत नृत्यांगं दर्शयेत् अंतराश्रितम् ।
मार्ग
गीताभिनय हेत्वादि नृत्यमार्गानुसारतः।।१८०

नृत्यमार्गातिरिक्तेन अधमो कथ्यते सदा।
घूर्णन वर्गमार्गंच पालि नागपथं तथा।।१८१

1 बेलूरु मन्दिर-नायिका

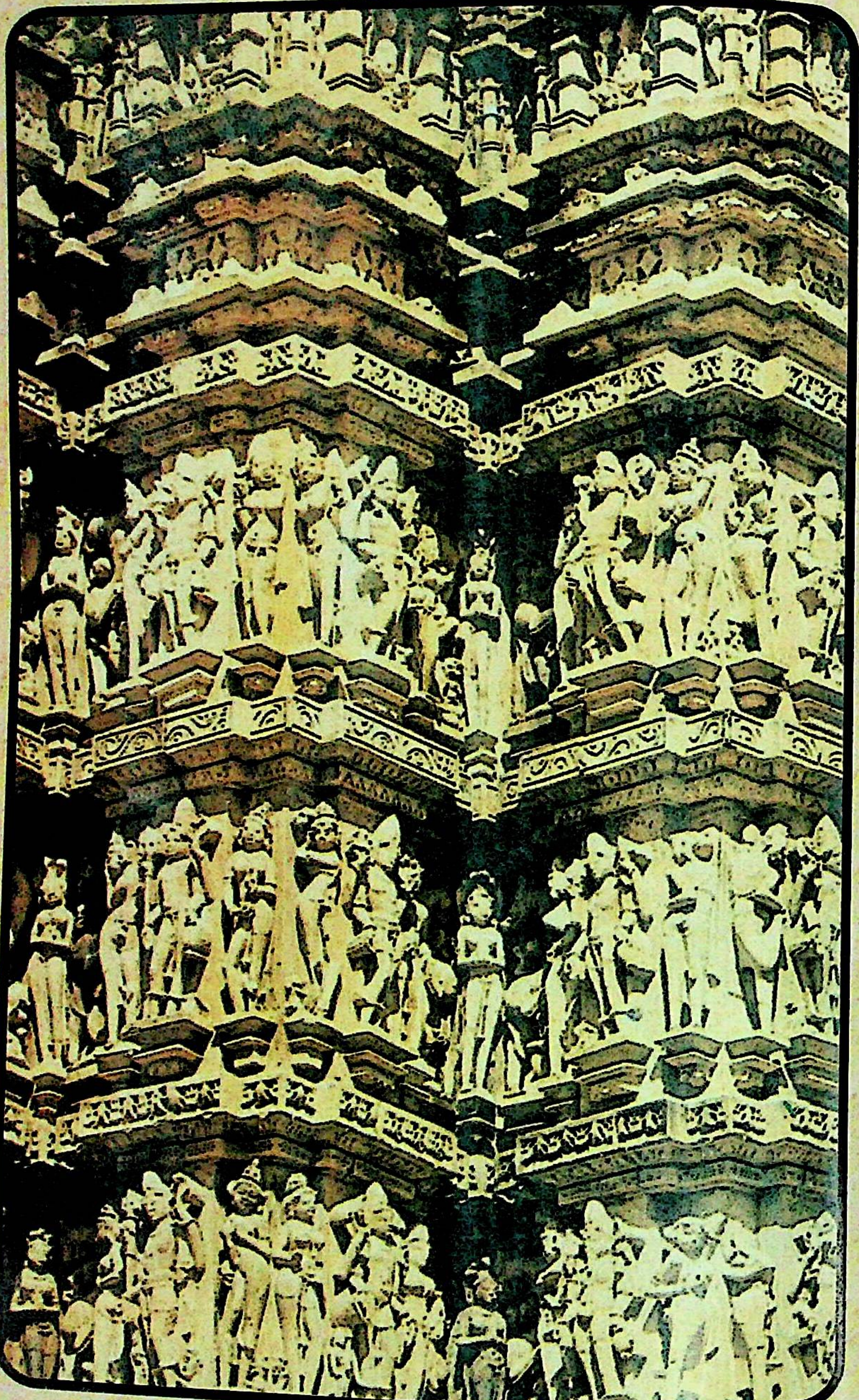

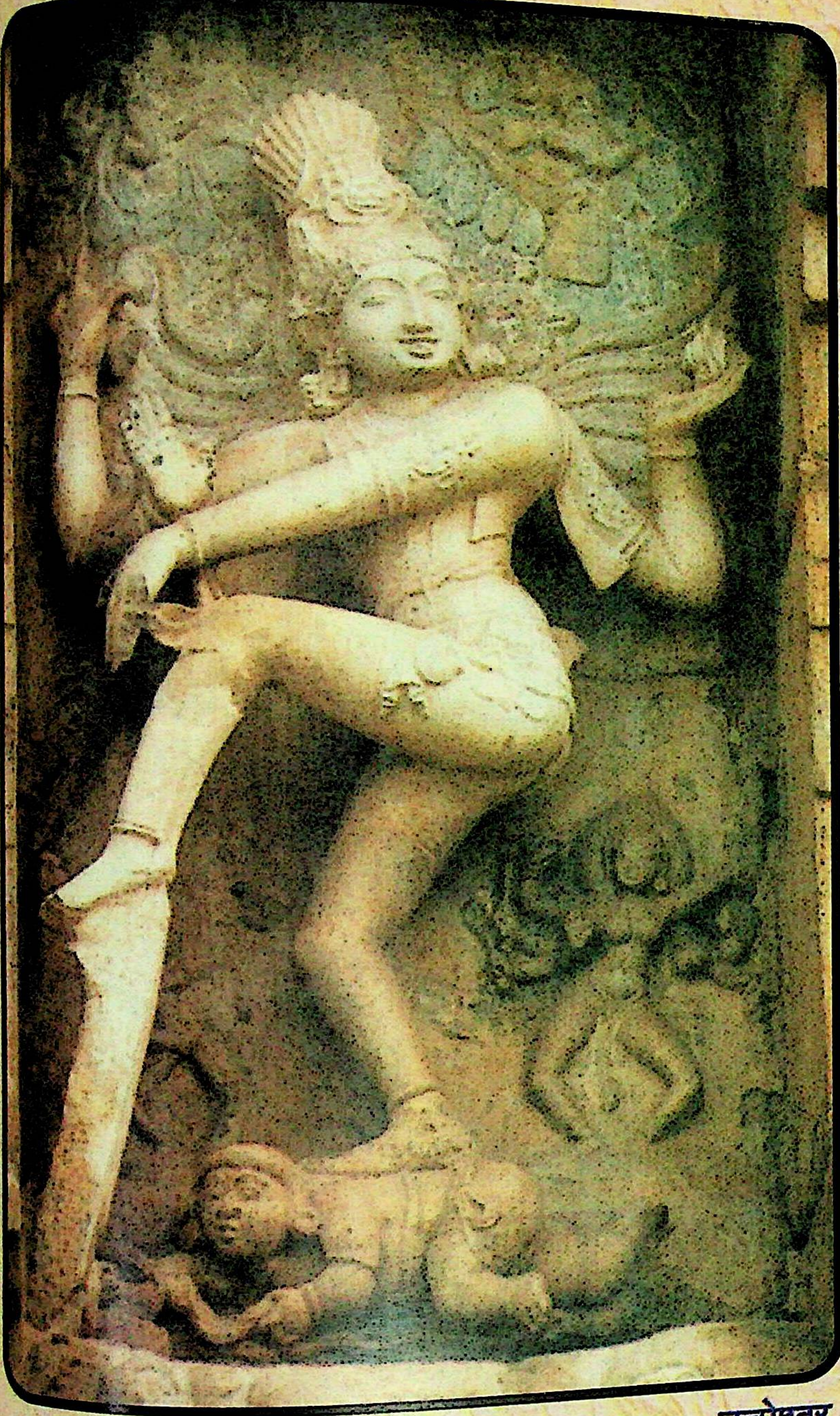

नृत्येश्वर

मृदंगवादक शिव

स्खनित वसना

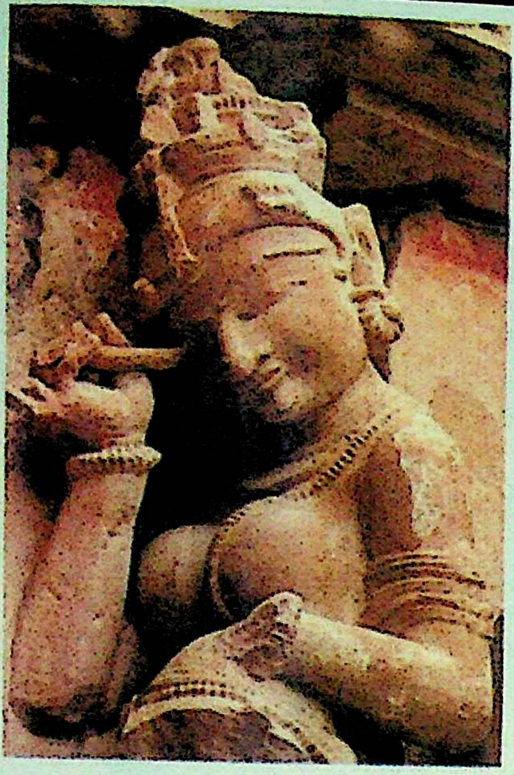

कज्जल लिए नायिका

चेन्नकेश्वर मन्दिर
नायिकाएँ

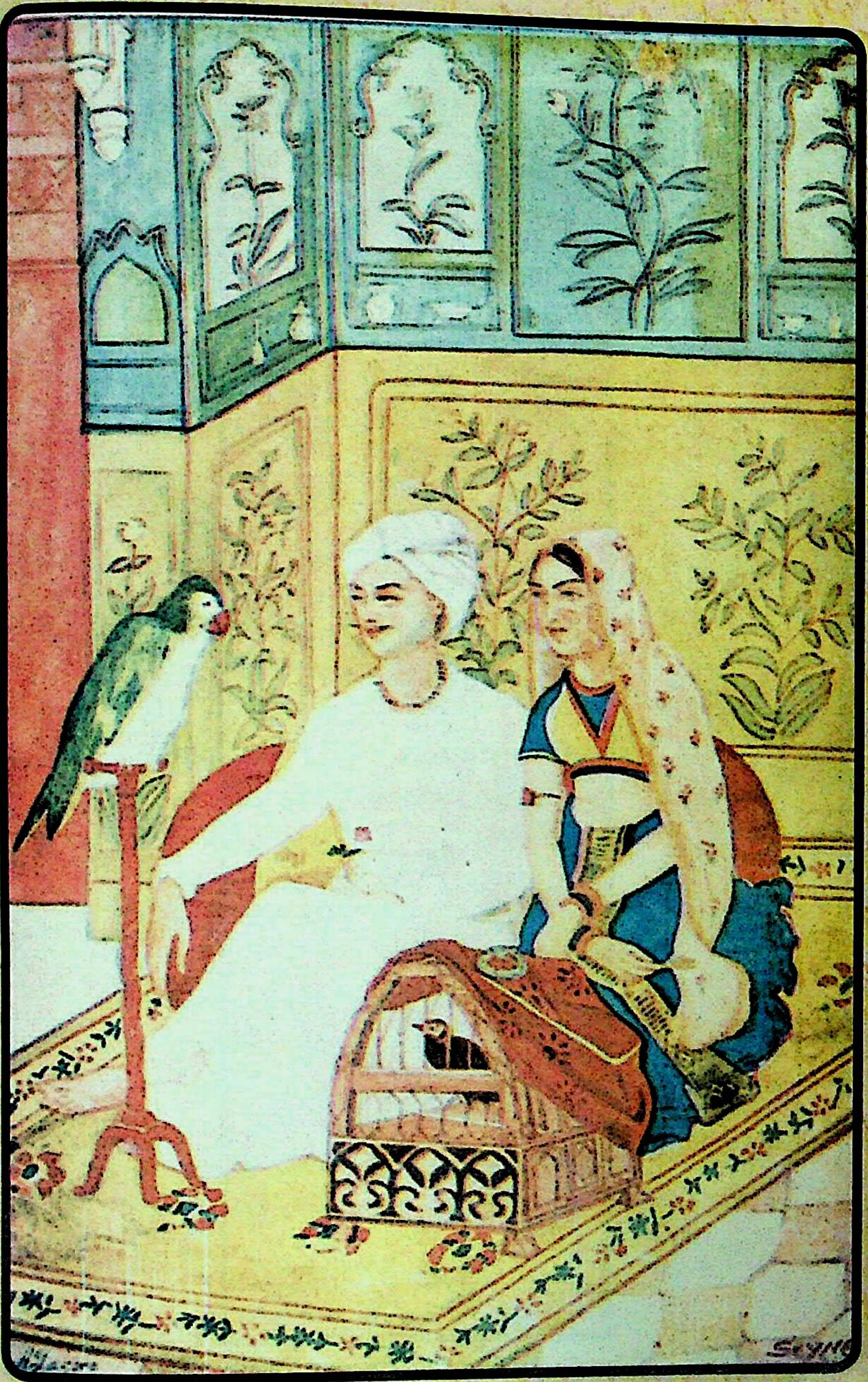

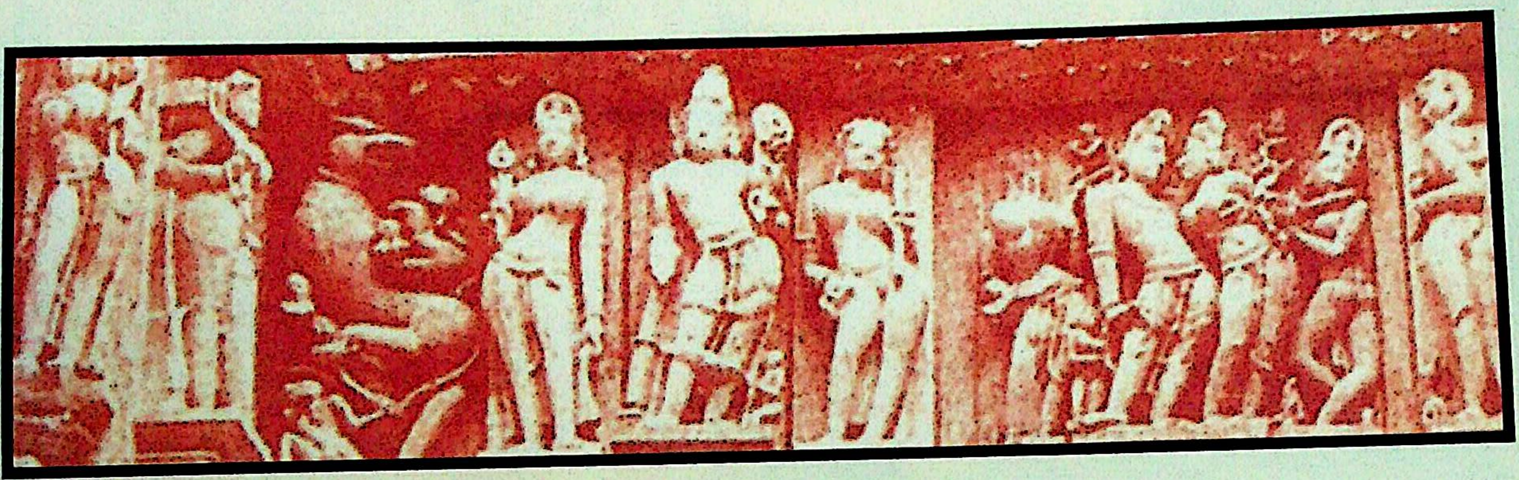

खजुराहो-नृत्य

नृत्यर्थे मार्ग चत्वारः आचरेत्नृत्यवेदिनः।
केन्द्रदेश समारभ्य नृत्यतालानुसारतः।।१८२

वलाकृति तदापार्श्वे वारत्रयं च घूर्णयेत् ।
सव्यपार्श्वस्थले अन्ते निवर्त्तेत् केन्द्रचिन्तने।।१८३

घूर्णनं ध्रुव नृत्येण सदा आनंद वर्द्धकः।
ध्रुवमावृत्य कालेन केन्द्रदेशं विजानत।।१८४

द्रुतांग नृत्यमारभ्य वर्गक्षेत्रावृतिं तथा।
प्रतिकोंणे तथा मध्ये ठाणी मुख्ये प्रदर्शयेत् ।।१८५

कोणवर्ग गतक्रीडा कथ्यते नृत्यवेदिनः।
यत्कोणादौ समारंभे-दन्ते तदनुसारिणः।।१८६

प्रविश्यंति सदाकेन्द्रे नृत्यार्थि चिन्तयेत् सदा।
दंड पादान्वये नृत्यं चालयेत् पादयुग्मकम् ।।१८७

अग्रे यथा तथापृष्ठे सहसममुखस्तथा।
पालिचालि इतिश्रेष्ठः छान्दान्तेच मनोहरम् ।।१८८

दंडाकृति पथोपालि आचरेत् नटीमुत्तमम् ।
भुजंग मार्ग संयुक्ते भुजंग गतिरूपतः।।१८९

प्रति पार्श्वेतुगन्तव्यं पातकेन्द्रानुसारतः।
एतानि मार्गभेदानि शृणु पाताङ्ग लक्षणम् ।।१९०

पात् (प्रयोग)

मार्गकेन्द्रे तथा अग्रे क्वचित् पातसुखावहम् ।
दंडायमान रूपेण आचरेत् पातयत्नतः।।१९१

यथा पाद तथाहस्त करताल समन्विते।
उत्तोलयेत् पदमेकं स्थापयेत् पार्श्वमुत्तमे ।।१९२

तदाकारे करेचैव दर्शयेत् समपार्श्वगे।
पुनः पादकरौ युग्म समरूपे समाकृषन् ।।१९३

अग्रे पादं तु संस्थाप्य वक्षक्षेत्रे करद्वयम् ।
एतानि पात संयुक्ते मात्रा स्पष्टः स जायते।।१९४

मात्रा विश्रान्ति रूपेण गरिष्टं पात सर्वदा।
दंडपादे सदाश्रेष्ठः लास्ये उग्रे च कुंभकम् ।।१९५

गीतारंभेन कर्त्तव्यं अन्ते वा ध्रुवमाश्रिते।
मध्यस्थानेन यत् क्षेत्रं कुतपादर्शकावृतम् ।।१९६

तत्स्थले नृत्ये कर्त्तब्यं सदापालि अनुसृते।
यद्रेखा कल्पितं क्षेत्र नटीमार्ग विवेचितम् ।।१९७

पालि

सपालि इति नृत्यांग प्रयोगे च चतुष्टयम् ।
मंडलं वर्गमार्ग च नागमार्गं च पंकजम् ।।१९८

नृत्यार्थी नृत्यकर्त्तव्यं पालिमार्गेविशेषतः।
उकुटादि समाहारे यथायत्र प्रयोजनम् ।।१९९

ध्रुवंप्राप्ते तथा आदौ प्रांते च आचरेत् सुधीः।
पालिमार्ग न कर्त्तव्यं गीताभिनये केवलम् ।।२००

शृणु न्यासविधि रम्यं पालि मार्गंतु यत्नतः।
नृत्येतालानुसारेण द्रुतयत्र प्रयोजनम् ।।२०१

घूर्णनं सतु कर्त्तव्यं धधाङ् नाद समन्विते।
नृत्यांते तालमध्ये च द्रुतनादत्रयं चरेत् ।।२०२

तरकट् तक्धा ज्ञात्वा वर्गपालि समाचरेत् ।
मंजुलं नृत्य प्रारभ्य केन्द्रं त्यक्त्वा च दक्षिणे।।२०३

नादत्रयः स विज्ञेयः कोणपत्रे विधानतः।
वर्गरेखान्वये रम्ये दर्शयेत् नटीमुत्तमम् ।।२०४

एतानि वर्गपाल्याख्यं द्रुतनृत्ये मनोरमम् ।
तालानुसारिणः नादउकुटादि सह तथा।।२०५

द्रुतनृत्ये यदिकुत्र बहुताल प्रयोजनम् ।
नागमार्ग समालम्ब्य धाधिनि् नाक् मुहुर्मुहुः।।२०६

उच्चार्य नृत्य कर्त्तव्यं ध्रुवनादे मनोहरम् ।
आरभ्य पादसंचार वामेभागे त्रयं गमेत् ।।२०७

पुनः नागगतिं ध्यात्वा दक्षिणे च त्रयं तथा।
एवं वारत्रयं गत्वा पुनः पृष्ठे त्रयं सुधी।।२०८

दर्शयेत् नागमार्गेन गीतांते च सुखावहम् ।
वंदनांते नटीज्ञात्वा मार्गं पंकज यत्नतः।।२०९

त्रिभंग ठाणी युक्तेन पाताकाकारमाचरेत् ।
गीताभिनय पूर्वे च यत्रालाप भवंति ह।।२१०

तत्रत्रिभंग युक्तेन पद्ममार्गे च घूर्णयेत् ।
अवलोक्य तथा लास्य हास्योष्ठ दर्शकावली।।२११

घूर्णयेत् पंकजाकारे प्रारभ्याभिनयं तथा।
गीताभिनय मध्येच भावांतर प्रवेशने।।२१२

त्तोलिन भंगीयुक्तेन कर्त्तव्यंविधि पूर्वकम् ।
छंदिताकर युक्तेन अलसा भंगीमाचरेत् ।।२१३

प्रसारयेत् पदमेकं तत्पार्श्वे पृष्ठ चुम्बिते।
छंदिताकर योगेन तद्भूमिं स्पर्शनान्तरम् ।।२१४

त्तोलयेकर छत्राङ्ग शिरोर्द्धवे समवेशयन् ।
क्षणे क्षणे पार्श्वदेशमारभ्य गगनं प्रति।।२१५

उत्तोलन (उठा)
दर्शयेत् त्तोलनं साहि उठालोके प्रतिष्ठितम् ।
नृत्यारंभेथवा मध्ये गीतशेषेविशेषतः।।२१६

एकपादान्वये पात त्तोलनेकिञ्चिदुत्तमम् ।
कटि पार्श्वोभये भाष मुहुर्मुहुः सदाचरेत् ।।२१७

हंस पक्षाकृति पल्लि योगेन दर्शयेत् सुधीः।
कुंभपाद समायुक्ते धाधिन्यादि यथाक्रमे।।२१८

गतियुक्त सदाभाष दर्शयेत् नटीमुत्तमम् ।
केवलं घूर्णने हीनं नाचरेत् नृत्यवेदिनः।।२१९

आसनेस्थिर भावाङ्गे पातादिनिष्प्रयोजनम् ।
सर्वगति समावेशे उकुटादि यथाविधि।।२२०

चरेत् आसनकालेन न खंड वाक्यमाचरेत।
काव्य वाक्य प्रयोगे वा नृत्यमध्येथवा यदा।।२२१

उपवेशन वइठा

उपवेशन भावाङ्ग प्रकुर्वन्ति नटिं क्वचित् ।
नेत्रादि भंगी भावार्थं आचरेत् नृत्यमासनम् ।।२२२

करमुद्रादि तद्भावे दर्शने सुमनोहरम् ।

आसन

आसनं द्विविधं श्रेष्ठं स्थिरा व्यापिनीमेवच।।२२३

स्थिरा भाव प्रकाशार्थं व्यापिनी चरमे चरेत् ।
पादांगुल्यो परिस्थिरे जानुभ्यां च तलं स्पृशेत् ।।२२४

स्थिरा

पादपृष्ठे समासीने स्थिरा वदंति पंडिताः।
व्यापिनी प्रांत नृत्ये च बंधारंभे समाचरेत् ।।२२५

प्रसारितांघ्रि स्वे पार्श्वे समाकारेण दर्शयेत् ।
ध्वजकर समायुक्ते दर्शयेत् संमुखं प्रति।।२२६

चिरा

चिरादेश इति ख्यातः वइठाङ्गःस कथ्यते।
व्यापिन्यन्ते यदाकुत्र नवगीते प्रयोजनम् ।।२२७

आचरेत् ठाणीश्रेष्ठं च यथाप्रारंभमुत्तमम् ।
अंजलीकर न ध्यायेत् नवनृत्ये क्वचित् सुधी।।२२८

करछंदान्वये पार्श्वे स्थापयेत् करपल्ल्वम् ।
त्रिभंगठाणी योगेन धनुपादे विशेषतः।।२२९

ठाणीयोगंतुकर्त्तव्यं दंडायमान यत्नतः।
कटिभागोपरि पल्लि आश्रितावत स्थापयेत् ।।२३०

मृदुताल समायुक्ते चालयेत् पदपल्लवः।
स्मितहास्यगते नेत्र अपांगादि सुचालने।।२३१

कटि संचालयेत् पार्श्वे क्षीणाकारे मुहुर्मुहुः।
त्रिभंगांते क्वचित् नृत्ये अर्द्ध स्वस्तिकमाचरेत् ।।२३२

स्वस्तिक ठाणीयुक्ते च मानमुद्रा प्रदर्शयेत् ।

ठिआ

ठिआ ठाणी इतिख्यातः सदामानंद वर्द्धकम् ।।२३३

तदन्तेतुतथा चालि योगेन नृत्यमाचरेत् ।
नृत्यारंभे गीतांते च मध्ये भावांतरेथवा।।२३४

सागति श्रेष्ठ नृत्यांगे लास्यनृत्ये विशेषतः।।

गतिचतुर्भेद

चतुर्विधा गतिश्रेष्ठः नृत्यगान महोत्सवे।।२३५

अग्रचालि पृष्ठ चालि चालिपार्श्व द्वयक्रमे।
पादाग्रलम्बने चालि धिन् धिन् ताक् वृत्तेमहत् ।।२३६

अग्रगति इति श्रेष्ठः नृत्याग्रे मोददायकम् ।
धीरपद समाक्षेपे पृष्ठदेशे गतिंचरेत् ।।२३७

किंचित् ह्रस्वगति पृष्ठे छंदपादैः सुयत्नतः।
प्रत्यावर्त्तन कर्त्तव्यं नृत्यारंभ स्थलावधि।।२३८

संमुख मुखयोगेन पार्श्वदृष्टि मनोरमम् ।
पृष्ठचालि इतिरम्यं गीताभिनये उत्तमम् ।।२३९

उकुटादिसमायुक्ते आचरेत् विधि पूर्वकम् ।
गीतभाव प्रकाशार्थे पार्श्वगति विचक्षणः।।२४०

ह्रस्वताल समाश्रित्य दर्शयेत् नटीमुत्तमम् ।
समाकारे द्वयोर्भंगे दर्शयेत् समसंख्यकान् ।।२४१

बुश्चिकादि समायुक्ते हस्तकादर्शयेत् सुधीः।
यत् पार्श्वे चालि कर्त्तव्यं तत्पार्श्वे मुख शोभनम् ।।२४२

नमुखंविषमे चैव विपरीतेऽधमं भवेत् ।
गतिमध्ये यदा कुत्र भावांतर प्रयोजनम् ।।२४३

कंपन

कंपन सह नृत्यांगं दर्शयेत् परिवर्त्तनम् ।
कटिदेश सुयत्नेन चालयेत् झटिति पुनः।।२४४

अन्यभावकराभासे दर्शयेत् निपुणैः सदा।
कंपनइतिसश्रेष्ठः गीतमान महोत्सवे।।२४५

उडूनृत्ये सदाध्येयकटि नृत्य विचक्षणम् ।
त्रिभंग कटि संप्राप्तेछंद पद प्रयोजने।।२४६

कटिकंपन कर्त्तव्यं करमुद्रासहस्तथा।
युग्म नृत्येकदाभावे कृष्णस्य रूपचिंतने।।२४७

कंपनादिसमायुक्ते दर्शयेत् तुङ्गमासनम् ।।
नृत्येछन्द सदाध्यायेद्विविधं ख्यातसर्वदा।
खण्डछन्द्यावृत्ति क्षेत्रे दीर्घछान्द इतीर्य्यंते।।

नृत्यकाले यथाताल तथापादंतुपातयेत् ।
पादानुसारमुखेन मुच्चार्य्य खण्ड छन्दकम् ।।

उकुट इति सख्यात उड्रे नृत्यार्थि मण्डले।
खण्ड छन्द सदारम्य ताल संदर्शनार्थये।।

गीताभिनय कालेन प्रसंगक्रमभेदतः।
काव्यांशमाचरेत् तत्रछान्द गायनतत्पराः।।

नानारसमयं भद्रं पौराणिकाश्रितं महत् ।
लीलाख्यानं सदाध्येयं छान्द ताले विशेषतः।।

आदौ रंगालये रम्ये सौम्यासनसमाचरेत् ।
कुतप मध्यदेशेच गायमोत्तर संमुखे।।

तालानुस्रुत पादश्चभंगी हर्षप्रदायकः।
शृणुत्वखण्डछन्दस्य लक्षणंमूलतः सुधीः।।

बहुधामुकुटख्यातं नृत्यार्थि मण्डले सदा।
संक्षेपात्र प्रवक्षामि तालज्ञानार्थ संप्रति।।

पादानुस्रृत मध्याङ्ग पादछान्दानुसारतः।
पातपातंतु कर्त्तव्य खण्डछन्दो गतेतथा।।

शृणुत्वं खण्ड छन्दादि लघुवाक्यंतथाक्रिया।
कटिभंगीतथा हस्तलेपनादि यथाक्रमम् ।।

शिष्टाचारे प्रवेशान्ते नाचरेत् छन्दखण्डकं।
केवलं दर्शयेत् त्रय नृत्येत अभिनन्दनं।।

छन्दाभिनन्दनं दिव्यं पञ्चधा मुख्यजायते।
स्कन्ध[1] स्पर्शा च भूमी[2] च वक्ष[3] संमुख एवच।।
कपोलस्पर्शना दिव्या शृणुतत् लक्षणंक्रमात् ।
कुम्भपादे द्वयोर्मुष्टि मुख साधारणं तथा।।

मुद्रिता नयनं नृत्ये स्कन्धास्पर्शातु दर्शयेत् ।
ध्वज हस्त द्वये भूमौ भूम्याभिनन्दनं चरेत् ।।

आसिका पादपृष्ठे च संमुखेलपनं तथा।
स्फारिता नेत्र वक्षे, च मुष्टिद्वयं समाकृते।।

ठिआचालि समायुक्ते मृदुपादाङ्गचालयेत् ।
कपोलोभय पार्श्वेच दर्शयेध्वजवल्लवाः।।

एकपाद समाकारे यदिअन्या प्रसारिता।
पृष्ठार्द्ध भूमीसंस्पर्शे तेयन दत्ता इतितथा।।

उत्तोलने च पार्श्वाङ्गे दृढनृत्येथवा सदा।
तेयनदत्ता तु कर्त्तव्यं खण्ड नृत्य महोत्सवे।।

तेया न तेयन दत्ता च छन्द मिलनेदृढनृत्यगे।
तैयन् धत्ता इतिख्यातः गीताभिनये वा चरेत् ।।

हस्ताभ्यांउभयोः पार्श्वे तेयनदत्ता कृतेपद।
सम्भवति तथा धा धा धेट् कुम्भे च सुशोभना।।

कम्पनकाल संप्राप्ते भंग्याङ्ग परिवर्त्तने।
दृते तेयन दत्ता कुर्य्यात् धैट धत्ता इतिर्य्यते।।

पादोभयाग्रे नृत्यार्थि कुम्भपाद यदिचरेत् ।
हस्तपक्षकरा यत्र टे टे इतिभिधियते।।

अथवा अग्र मुक्तंच पाते पृष्ठांश चुम्बिते।
ध्वजहस्त द्वयं तत्र टे टे कुर्य्यात् मनोरमा।।

नृत्यारम्भे च मध्येच प्रान्तभागे विलक्षणे।
पादपातंतुकर्त्तव्ये धै दत्तादि यथा ताम् ध्धत्ताथेयो।

उकुटादि समायुक्ते वन्दनांते विचक्षणा।
आचरेत् क्षुद्र तालाभ्यां नर्त्तने सुमनोहरम् ।।

छन्दारम्भे तथा नृत्यमाचरेत् नटी सर्वदा।
तालानुसृत शब्दाभ्यां पाद हस्त समन्वये।।

ताम् धत्ता त्ते यां इतिआदौ समाचरेत् ।
(रचेत) रचयेत् नृत्याङ्गणे रम्ये शृणुन्यासस्तु यत्नतः
पादद्वय समानेच भूमौ सम निपातिते।
चतुर दक्षिणोयुक्ते वाम शिरोर्द्धये तथा।।

दक्षिण लम्बितापार्श्वे दृष्टिं पार्श्वेच निश्चलम् ।
ताम् इति समाक्षा तं धत्ता शृणु विधानतः।।

पादद्वय तथा न्यासेत् चलनंच शनैः शनैः।
हस्तैक अधरे न्यस्तं अन्या लम्बाकृते तथा।।

धत्ताइति सदारम्य नृत्य नाट्य महोत्सवे।
पश्चात् गति इति ध्येयं क्षेत्र प्रान्ते विशेषतः।।

एक पाद समानेच अपरे अङ्गुलैः सह।
गमयेत पृष्ठ भागेच कराभ्यां कटिमाश्रिते।।

छन्दकुम्भोपमं पाद दृष्टि भूमौपरि तथा।
त्ते नृत्यार्थि दिव्येन आचरेत् विधिपूर्वकं।।

पुनः यार्थं तथा पादे कृत्वागतिञ्च पूर्ववत् ।
हस्तद्वय ध्वजाकारे हृदयेच कराङ्गुलौ।।

मध्यमा मध्यमा अग्रे दृष्टि मुखएवच।
ताम् धत्ता तेया मिति आचरेत् नटी उत्तमा।।

एवमाचरेत् न्यास नृत्य मध्ये क्षणे क्षणे।
ताम्धत्ताधिकं तत्ता अनुसारेच पातनम् ।।

आचरेत पाद युत्तेच गुरुज्ञानानुसारतः।
श्रृणुउकुटे संक्षिप्ते नृत्याचार क्रमान्वये।।

शिष्टाचारे तथारम्भे वटु नृत्येविशेषतः।
देश रित्यानुसारे उत्कुटं वहुधा यदि।।

अस्मद् देशानुसारे उकुट त्रिविधोत्तमा।
अथ शिष्टाचार उकुट
नृत्यारम्भे धनुःपादे केवलं पादचालनम् ।।

मृदुभावे तथा पाद कटि नेत्रादि क्षीणतः।
आलाप समये यत्र तालानुरतगायकाः।।

तत्काले तु तथाकुर्य्यात् मृदुखण्डितच्छन्दकं।
धिन् त्ता नाक धिना
धिन त्ता नाक् धीना ताक्
अपरञ्च- धीन् धीन् त्ताक्

पाद पातान्तरे कुर्य्यात् कटिचालन मुख्यतः।
षोडशं अथवा सूर्य्य अथवा दिग वारकं।।

ततः गत्वा त्रिपादंच संमुखंप्रति तत्क्षणात् ।
आरभ्यते तथा दिव्येगीताभिनये यत्नतः।।

गीतारम्भे यथागीत तत्तालानुस्तुतं पदं।
प्रदर्शनार्थ तत् कर्य्याद् प्रारम्भ नृत्यमादकम् ।।

नृत्यकाले तथाध्येय उकुटं खण्डछन्दक।
किञ्चित् क्षीणं कदा वेगं कदा द्रुतादि माचरेत् ।।

अथ प्रारम्भिक उकुटोदाहरणः।

धीन् त्ता नाक् धीना तिन्ता, "नाक् धीना तिनत्ता से"
झेणे झेणे धिनत्ता ताक् धीना तिन्ता।
केट्टे केट्टे धिनत्ता ताक् धीना तिन्ता।
झेणे झेणे कट् धाक् तिन्धाक् तिन् धाक्।
धाध्धा धिन् धाक् धिन् त्ता, इत्यसम् ।।

अपरञ्च

ताम् त्ता ना ते त्ताम् से तारकट् धत्ता नाध् त्तिन्ना
ताम् त्ता नाते त्ताम् , त्ताधर् कट् धा त्ताधर्कट् धा।।
ताम् त्ता नातेताम् तकट् तरकधै तरकटतक्धै।
तम्त्ता नातेताम् इत्यसम्

अपरञ्च

धै धै ताक् धिनाक् धिन् ताक् से ताके धेइ धैक्
धिनाक् धिनताक् तरकट् धै धैक् धैक् धिनाक् धिनत्ताक

अपरञ्च

ताम् त्ता ना ते त्ताम् से तारकट् धत्ता नाध्तिन्ना

ताम् त्ता नातेत्ताम्, त्ताधर्कट् धा त्ताधर्कट् धा।।

ताम् त्ता नातेत्ताम् से तरकट् धत्ता तरकट् धत्ता

ताम् त्ता नातेताम् तरकट् तकधै तरकटतक्धै।

ताम् त्ता नातेताम् इत्यसम्

अपरञ्च

धै धै ताक् धिनााक् धिन् ताक् से ताक् धेइ धैक्

धिनाक् धिनताक् तरकट् धै धैक् धैक् धिनाक् धिनत्ताक

तरकट तक् थै तक् थै तक् थै ताक् धिनाक् धै

ताक् धा तरकट् ताक् धा ताक् धै तारकट् ताक् ध्धा

तरकट ताक् ध्धा से ताक् धिलाङ्ग धिन् त्ता धैधै।।

वटु नृत्ये तथान्तेच गीतानु सारछन्दकम् ।

आचरेत् द्रुत तालाभ्यां वटु नृत्य महोत्सवे।।

अधुना नृत्यज्ञानार्थं वक्षाभिरागलक्षणं।

मल्लारादि क्रमेछन्द आदिताल विशेषतः।।

जय जय शंकर किंकर भवजलभंजन जनरञ्जन आ

नवशशिमण्डित शिखण्ड चण्डकर शशधर वह्नित्रिलोचन आा।

तिअ इह आइअ अइया तिअअइअ इति कृष्ण दासोक्त

अ इ अ इ आ आ आ आ आ आ आ आ इतिध्रुवालापः

ताक् धिना नाक् धिना तेत् नाधिना धिन् धिनधिना ताम् धिन्ना

ताम् तारकट् धिना ताक्धि–नाकधिना धिन् धिन् धिन् तामधिना

नाटरागे कैकतालेच

धा दिक् दां दां किट् कट क्रिण खेड्
थादिक् थाङ्ग तां त्वां तारेत्त थारि थारिकुथासि द्दिक् से
दिअ तात तात्ता दिअ अत्तात् ता ता त तात्त।
द्रिमिकट् धदिक् वाथो दा दि दिक् रट कट् ।।

मट कट कत्ति धा किनिगोडि धाकिडि गिंडि।
आ कु कु चैँ त्र चैँ त्र चैँ चैँ चैँ
रैँ तारि रैँ तारि थारि मट कट कुआँ
इति कृष्णदासेनोक्तम्
एताः बहुविधाःछन्द खथ्यातासङ्गीतमण्डले।

गीतप्रकाशग्रन्थेच संगीतरसिवेः तथा
नृत्ये छन्दः सदाध्येयं द्विविधंख्यात सर्बदा।
खण्डछन्दावृत्तिक्षेत्रे दीर्घछान्द इतीर्यते।।

नृत्यकाले यथातालस्तथा पादंतु पातयेत् ।
पादानुसारमुच्चार्य्यं मुखेन खण्ड छन्दकम् ।।

उकुट इति सख्यातः उड्रे नृत्यार्थी मण्डले।
खण्ड छन्दःसदारम्यं ताल संदर्शनार्थये।।

गोताभिनय कालेन प्रसङ्ग क्रम भेदतः।
काव्यांशमाचरेत् तत्र छान्दगायन तत्पराः।।

नानारसमयं भद्रं पौराणिकाश्रितं महत् ।
लीलाख्यानं सदाध्येयं छन्दगान्ते विशेषतः।।

आदौरङ्गालयेरम्ये सौम्यासन समाचरेत् ।
कुतप मध्यदेशेच गायकः संमुखे तथा।।

तालानुसृत पादंच भङ्गीहर्षप्रदायकः।
शृणुत्वं खण्डछण्दस्य लक्षणं स्थूलतः सुधीः।।

बहुधामुकुट ख्यातः नृत्यार्थी मण्डले सदा।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि तालज्ञानार्थ संप्रति।।

पादानुसृत मध्याङ्ग पादछन्दानुसारतः।
पादपातं तु कर्त्तव्यं खण्ड छन्दोगते तथा।।

शृणु त्वं खण्ड छन्दादि लघुवाक्यं तथाक्रिया।
कटिभङ्गीतथाहस्त लपनादि यथाक्रमम् ।।

शिष्टाचारे प्रवेशान्ते नाचरेत् छन्दखण्डकं।
केवलंदर्शयेत् त्रयं नृत्ये च अभिनन्दनम् ।।

छन्दाभिनन्दनं दिव्यं पञ्चधा मुख्य केवलं।
स्कन्धस्पर्शा च भूमि च वक्ष संमुख एव च।।

कपोलस्पर्शना दिव्या शृणु तल्लक्षणं क्रमात् ।
कुम्भपादेद्वयोः मुष्टि मुखंसाधारणंतथा।।

मुद्रितानयनंनृत्ये स्कन्धस्पर्शातु दर्शयेत् ।
पादपृष्ठोपरिरूढा संमुखे शिरदर्शयेत् ।।

पादहस्तद्वये भूमौ भूम्याभिनन्दनंचरेत् ।
आसिका पादपृष्ठेच संमुखेलपनंतथा।।

स्फारिता नेत्र वक्षेच मुष्टिद्वय समाकृते।
ठिआचालिसमायुक्ते मृदुपादाङ्ग चालयेत् ।।

कपालोभय पार्श्वेच दर्शये ध्द्वज वल्लवाः।
एकपाद समाकारे यदि अन्या प्रसारिता।।

पृष्ठार्द्धभूमिसंस्पर्शे तेयन दत्ता इति तथा।
उत्तोलने च पार्श्वाङ्गे द्रुतनृत्येथवा सदा।।

तेयन दत्ता तु कर्त्तव्यं खण्डनृत्ये महोत्सवे।
तेया न तेयन दत्ता च (छन्द) मिलनेद्रुतनृत्यगे।।

तैयन धत्ता इतिख्यातः गीताभिनय कर्मणि।
हस्ताभ्यां उभयोः पार्श्वे तेयन दत्ता कृतेपदम् ।।

सम्भवन्ति तथा धा धा धेट् कुम्भे च सुशोभना।
कम्पन काल संप्राप्ते भङ्गयाङ्ग परिवर्त्तने।।

द्रूते तेयन दत्ता कुर्य्यात् धैट्धत्ता इतीर्यते।
पादोभयाग्रे नृत्यार्थी कुम्भपादं यदाचरेत् ।।

हंसपक्षकराःयत्र टे टे इत्यभिधियते।
अथवाअग्रमुक्तेच पाते पृष्ठांच चुम्बिते।।

ध्वजहस्तद्वयंतत्र टे टे कुर्य्यान्मनोरमा।
नृत्यारम्भे च मध्येच प्रान्तभागे विलक्षणे।।

पादपातं तु कर्त्तव्यं धैदत्तादि यथातथा।
उकुटादि समायुक्ते वन्दनान्ते विचक्षणा।।

आचरेत् क्षुद्रतालाभ्यां नर्त्तने सुमनहारं।
छन्दारम्भे तथानृत्य माचरेत् नटीसर्वदा।।

तालनुसृत शब्दाभ्यां पादहस्त समन्वये।
ताम् धत्ता त्तेयां इति आदौ समाचरेत् ।।

(रचेत्) रचयेत् नृत्याङ्गणेरम्ये शृणुन्यासस्तु यत्नतः
पादद्वय समानेच भूमौ समनिपातिते।।

चतुरः दक्षिणोर्युक्ते वामशिरोर्द्धये तथा।
दक्षिण लम्बिता पार्श्वे दृष्टिपार्श्वे च निश्चलं।।

ताम् इति समाख्यातं धत्तां शृणु विधानतः।
पदद्वयेंतथा न्यासेत् चलनं च शनैः शनैः।।

हस्तैकं अधरे न्यस्तं अन्या लम्बाकृते तथा।
धत्ता इति सदारम्य नृत्य नाट्य महोत्सवे।।

पश्चात् गति इति ध्येयं क्षेत्रप्रान्ते विशेषतः।
एकपाद समानेच अपरंअङ्गुलैःसह।।

गमयेत् पृष्ठभागे च कराभ्यां कटिमाश्रिते।
छन्दकुम्भोपमं पादं दृष्टिभूमौपरि तथा।।

त्ते नृत्यार्थी दिव्येन आचरेत् बिधिपूर्वकं।
पुनः यां थं तथा पादे कृत्वागतिंच पूर्ववत् ।।

हस्तद्वय ध्वजाकारे हृदयेच कराङ्गुलौ।
मध्यमा मध्यमा अग्रे दृष्टिः संमुख एवच।।

ताम् धत्ता तेयामिति आचरेत् नटीमुत्तमा।
एवमाचरते न्यासंनृत्यमध्ये क्षणे क्षणे।।

ताम् धत्तादिकं तत्ता अनुसारे च पातनं।
आचरेत् पाद युक्ते च गुरुज्ञानानुसारतः।।

शृणु उकुट संक्षिप्ते नृत्याचार क्रमान्वये।
शिष्टाचारे तथारम्भे वटुनृत्ये विशेषतः।।

देशरूच्यनुसारेण उकुटं बहुधायदि।
अस्मद्देशानुसारेणं उकुटं त्रिविधोत्तमा।।

अथ शिष्टाचार उकुटम

नृत्यारम्भै धनुःपादे केवलंपादचालनं।
मृदुभावे तथा पाद कटि नेत्रादि क्षीणतः।।

आलाप समये यत्र तालानुरत गायकाः।
तत्काले तु तथा कुर्य्यात् मृदुखण्डित छन्दकम् ।।

धिन् त्ता नाक् धिना
धिन् त्ता नाक् धिना ताक्
अपरञ्च- धिन् धिन् त्ताक्।

पादपातान्तरे कुर्य्यात् कटिचालन मुख्यतः।
षोडशं अथवा सूर्य्यं अथवा दिगवारकं।।

ततः गत्वा त्रिपादंच संमुखंप्रति तत् क्षणात् ।
आरम्यते तथा दिव्ये गीताभिनय यत्नतः।।

गीतारम्भे यथागीत तत्तालानुसृतं पदं।
प्रदर्शनार्थं तत् कुर्य्यात् प्रारम्भनृत्यमादकम् ।।
नृत्यकाले तथाध्येयं उकुटं खण्डछन्दकं।
किञ्चित् क्षीणं कदावेगं कदा द्रुतादिमाचरेत् ।

अथ प्रारम्भिक उकुटोदाहरणम्

धीन् त्ता नाक् धीना तिन् त्ता नाक् धीना तिनत्ता से
झेण झेणे धिनत्ता ताक् धीना तिनत्ता। केटे केटे।
धिनत्ता ताक् धीना तिन्ता झेणे झेणे कट धाक् तिन् धाक्,
तिन्धाक् धा धा धिन् धाक् धिन् त्ता इत्यसम् ।
अपरञ्च- ताम् त्ता नाते त्ताम् से तार्कट् ।

धत्ता नाध् चिन्ना ताम् त्ता नातेत्ताम् त्ता धर्कट धात्ताधर् कटधा
ताम् त्ता नाते ताम् से तरकट् धत्ता तरकट् धत्ता।
ताम् त्ता नाते ताम् तरकट् तक् धै तरकट तकधै
ताम् त्ता नाते ताम् इत्यसम् ।।

अपरञ्च- धै धै ताक् धिनाक् धिन् ताक् से
ताक् धेइ धैक् धिनाक् धिन् ताक् तरकट् धै।
धैक् धैक् धिनाक् धिन् त्ताक् तरकट तक् थै।।

तक्थै तक्थै ताक् धिनाक् धै ताक् धा तरकट्
ताक् धा ताक् थै तारकट् ताक् धा तरकट् ताक् धा से।
ताक् धिलाङ्ग धिन् त्ता धै धै।।

वटुनृत्ये तथान्तेच गीतानुसार छन्दकं।

आचरेत् द्रुततालाभ्यां वटुनृत्यं महोत्सवे।।

नृत्यज्ञानार्थमधुनावक्ष्यामि रागलक्षणं।

मल्लारादिक्रमेछन्दः आदिताल विशेषतः।।

जय जय शङ्कर किङ्कर भवजलभञ्जन जनरञ्जन आ नवशशि मण्डित शिखण्ड चण्डकरशशधर वह्नित्रिलोचन आ तिअ इह आइअ अइआ तिअ अइअ इति कृष्णदासोक्त अइअ इआ आ आ आ आ आ आ आ इति ध्रुवालापः। ताक धिना नाक् धिना तत्ता नाधिना

धिन् धिन् धिना ताम् धिन्ना

ताम् तारकट् धिना ताक् धि नाक् धिना धिन् धिन्

धिन्न ताम् धिना।।

नटरागेण एकताले च

धा दिक् दां दों किट् कट् क्रिण खेड़

था दिक् थाङ्ग त्वां तारेत थारि, थारि कुथासि दिक् से

दिअ तात तात्ता दिअ त्तात् ता ता त ता त्ता।

द्रिमिकट धदिक् दाथो दादि क् दिक् रट कट मट कट

कत्ति धा किनिगोडि धाकिडि गिडि आ कु कुचैँ त्रचैँ त्र

चै चैँ चैँ रैँ तारिरैँ तारि थारि मट कट कु आँ

इति कृष्णदासेनोक्तम्

एताः बहुविधाः छन्दः ख्यातःसंगीत मण्डले।

गीत प्रकाशक ग्रन्थेच संगीतरसिके तथा।

तदानुसार कर्त्तव्यं उकुटाणि यथासुखम् ।
गीताभिनय कर्त्तव्यं काव्य वाक्यानुसारतः॥

वाक्यांशशब्दभावेन भावभाव विलक्षणे।
नटि विषय रूपेण दर्शयेत् भावविस्तरम् ॥

एताभिनय संख्यातः सर्वेषांनन्द वर्द्धकम् ।
देवतानन्द वर्द्धश्च नृपचित्त विमोदकम् ॥

शुद्धाभिनयज्ञानेन नृत्यार्थी सिद्धदायते।
दशाभिनय मात्रेण सर्वपापं विनश्यति॥

शताभिनये प्रत्यक्षं मुक्तिजायेत निश्चितम् ।
धनं धान्यंञ्च गोलक्ष्मी वृत्ति र्भवति निर्मलम् ॥

नृत्यमहोत्सवे वापि देवताग्रे सुभक्तितः।
त्रयाभिनय मात्रेण चतुवर्ग फलंभवेत् ॥

रङ्गभूमौपरिदिव्ये दशनृत्यंयदिचरेत् ।
रङ्गप्रियमहादेवी सन्तोषंजायतेक्षणात् ॥

रङ्गभूमिमहं वक्ष्ये शृणु लक्षण यत्नतः।
नाट मण्डप सख्यातः नृत्यर्थं स्थलमुत्तमम् ॥

नाट्यशालालक्षणं

शुद्धभूमौपरि कुर्य्यात् शोधनादि सुखावहं।
रङ्गभूमिं तु कर्त्तव्यं तथाच नाट्यमण्डपं॥

रङ्गभूमि द्विविधञ्च नाट्यवेश्म च मण्डपम् ।

नाटकार्थेरङ्गवेश्म नृत्यार्थे नाट्यमण्डपम् ।।
राजपुराङ्गणे मध्येकुर्यात्तु नाटमण्डपम् ।
नृत्यमण्डप पुण्यंच श्रेष्ठ नृत्य महोत्सवे।।

चतुरस्त्राकृति मञ्च द्विपीठंस्तम्भशोभितं।
द्वात्रिंश हस्त विस्तारं कुर्य्यात् पीठंसुखावहं।।

नाटपीठाख्यआद्येच चतुरस्त्राकृतिसमम् ।
पश्चिमे युग्मसोपानं नवावर्त्तंच सम्मुखे।।

नानाचित्रमयंपीठं नाना कर्ममयं शुभम् ।
कुम्भमीन श्च पुष्पश्च विलिख्य पीठमुत्तमे।।

चतुःहस्त प्रमाणेन मञ्चं कुर्य्यात् चतुर्दिगे।

दर्शक मञ्च एतेषां पीठोन्यंच तथोपरि

शुभलग्ने तु कर्त्तव्यंरङ्गपीठं सुयत्नतः।
द्विहस्तंवात्रिहस्तोच्च कुर्य्यात्तु मत्त वारणि।।

प्रतिकोणेच कीलश्च सोपान प्रतिमध्यमे।
नानामूर्त्तिमयंपीठं उर्द्धवपीठ सुलक्षणम् ।।

अर्द्धहस्तप्रमाणेन कुर्य्यात् वारणमण्डलं।
गजबन्ध श्च पुष्पश्च पर्ण्ण कुम्भं सु यत्नतः।।

मत्तवारणि ऊर्द्धवे च स्तम्भं कुर्य्यात् शुभक्षणे।
ब्राह्मणः पश्चिमे चैव मध्ये क्षत्रियमेवच।।

वैश्यपूर्वे तथापूर्वे शूद्रस्तम्भचतुष्टयं।
षोडशस्तम्भ कुर्बीतं विंशहस्त प्रमाणतः।।

द्विहस्त चालमध्येच चाल पीढाकृतिंचरेत् ।
चालोर्द्धेच गवाक्षश्च नानामूर्त्ति विधानतः।।

पुनश्चालोपरि तत्र कुम्भ वस्त्र चिरालकं।
मध्यदेशे नृत्यवेश्मोपरि चन्द्रातपंमहत् ।।

उत्तर पार्श्वसंरुद्धच उभयस्तम्भमध्यतः।
कुतपार्थे सदा स्थानं वामे वीणाच गायिका।।

उत्तरगायिका सव्ये मर्दलं कांस्य तालिकं।
काष्ठताल तथा पृष्ठे नाट्याचार्य्यं तथोत्तरे।।

मध्ये नटी सदामुख्यः पश्चिमे ईष्ट विग्रहं।
दक्षिणे मध्यदेशेच नृपस्थान सुमण्डितं।।

दक्षिणपश्चिमोर्मध्ये गुरुपुरोहितस्थलं।
आग्रे वैश्य स्तम्भांशं पुरवगोर्थ निर्ण्णयेत् ।।

तत्पार्श्वे सेवकाःसर्वे दर्शकाःपरिदर्शकाः।
इष्टमुख्यं सदा नाटे नृत्ये लक्ष्यं नरोत्तमं।।

दर्शका उपलक्ष्यश्च नाटीसंलक्षिकामहत।
नृत्य समर्पणंकुर्य्यात् इष्टार्थंविधिपूर्वकं।।

प्रदर्शयेत् ततः नृत्यं नृपतोषार्थ यत्नतः।
नृपदेवतनुःसाक्षात् कुशली सचीवप्रियः।।

सर्वज्ञानप्रियोराजा कलाचित्र रतिप्रियम् ।
खेमुण्डि राजमार्त्तण्डा नक्ष्मीमाङ्कितंपदं।।

नारायण महीपालः सदा नारायणः प्रियः।
तस्य तोषार्थं नृत्यार्थी मोदार्थं ग्रन्थमुत्तमम् ।।

नृत्य दर्पण मार्गेण ग्रन्थाभिनय चन्द्रिका।
नृत्यखण्ड भावखण्ड छन्दखण्ड समन्वितं।।

त्रिखण्ड पुटितंग्रन्थं नृत्य शास्त्रमिदंशुभम् ।
महेश्वर दिज श्रेष्ठः नृत्यज्ञानविशारदः।
सुकण्ठगायकरत्न नृपनारायणाश्रितम् ।।

इति श्री महेश्वर महापात्र विरचिते अभिनयचन्द्रिकायां
छन्दखण्डः समाप्तश्चायं ग्रन्थः।।

दिव्यसिंहदेवमहाराजस्यविजयसम्वत्सरेद्वाविंशाङ्के चैत्र शुक्ल नवम्यायांतिथौ लेखनकार वड़खेमुण्डि मधुदाशेनलिखितम् ।

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]

शिवशङ्कर त्रिपाठी

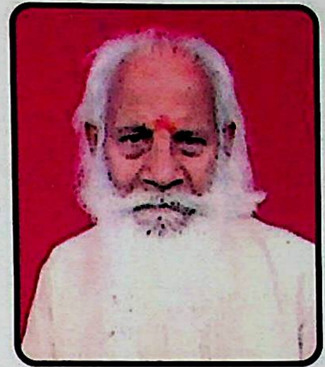

जन्म : २० फरवरी, सन् १९३६ ई०।
जन्मस्थान : ग्राम बेदौली, माण्डा, जनपद - इलाहाबाद।
पालि भाषा और साहित्य में डी०फिल्०। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा साहित्य के अधीती।
श्री त्रिपाठी जी द्वारा हिन्दी में रचित काव्य, कथा और आलोचना, इतिहास-संस्कृति-विषयक अनुशीलनात्मक प्रचुर साहित्य से अतिरिक्त, संस्कृत तथा पालि भाषा-साहित्य की कतिपय विशिष्ट रचनाएं- हिन्दी के महाकवि देव द्वारा लिखी हिन्दी अध्येताओं के लिए सर्वथा अज्ञात नायिका-भेद ग्रन्थ-शृङ्गार विलासिनी।
मुगलकालीन भारतीय समाज और राजनीतिक परिवेश तथा संस्कृत साहित्य के वर्चस्व भट्टवंश का यश-गाथापरक काव्य-भट्टवंशकाव्यम्। रामकथा-विषयक काव्य-रामकर्णामृतम्, चीनी त्रिपिटक में संकलित रामकथा विषयक दो जातकों-अनामकम् तथा दशरथ कथानकम् पर आधारित काव्यकृति चीन रामायणम् हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद-सहित। 'गीतशङ्कर' संस्कृत गीत काव्य का हिन्दी अनुवाद एवं संगीत-माधवम् (विस्तृत भूमिका-सहित हिन्दी अनुवाद)। अद्यावधि अप्रकाशित नायिका-भेद विषयक ग्रन्थ 'शृङ्गारमाला' का सम्पादन और विस्तृत भूमिका (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी) संग हिन्दी अनुवाद। जैनकवि पद्मसुन्दर कृत अकब्बरसाहि शृङ्गारदर्पणः (पाण्डुलिपि)। साथ में संस्कृत-काव्यशास्त्र विषयक (संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी) विस्तृत विवेचन। यह जैन भाषा-साहित्य में एक मात्र नायक-नायिका-विश्लेषक, शृङ्गाररसाश्रयी रचना है।
पालि साहित्य की अतिप्रख्यात आठ कवयित्रियों का काव्य-संकलन। विस्तृत भूमिका सहित काव्य रूपान्तरण सेट्ठ थेरी गाथा समग्ग। काव्यशास्त्र एवं पालि साहित्य पालि भाषा-साहित्य का प्रथम एवं प्रामाणिक काव्य-शास्त्रीय विवेचना। भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण-तिथि-विषयक नयी स्थापना, ई०पूर्व (५१६-५१२) पूर्वार्द्ध भाग। पालि भाषा-कथासाहित्य 'जातक-अट्ठकथा' का हिन्दी-अनुवाद। पालि मूल-संग हिन्दी अनुवाद पांच खण्ड (तीन हजार पृष्ठ) प्रकाशित। दो खण्ड (दो हजार पृष्ठ) प्रकाशन-क्रम में। पालिभाषा-विकास-क्रम-विषयक प्रामाणिक विवेचन।
हिन्दी-संस्कृत की ७ पुस्तकें पुरस्कृत। त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका 'संगमनी' का संपादन। संस्कृत पत्रकारिता के लिए 'नारद पुरस्कार' से सम्मानित।

भारतीय मनीषा सूत्रम्

दारागंज, प्रयाग

ISBN 819088906-0

9 788190 889063